श्रीयोगवशिष्ठ महारामायण
द्वितीय मुमुक्षु प्रकरण

अनुक्रम

श्रीपरमात्मने नमः

श्रीयोगवशिष्ठ द्वितीय मुमुक्षु प्रकरण प्रारम्भ

मुनिशुकनिर्वाण–वर्णन

वाल्मीकिजी बोले, हे साधो! ये वचन परमानन्दरूप हैं और कल्याण के कर्त्ता हैं इनमें सुनने की प्रीति तब उपजती है जब अनेक जन्म के बड़े पुण्य इकट्ठे होते हैं। जैसे कल्पवृक्ष के फल को बड़े पुण्य से पाते हैं वैसे ही जिसके बड़े पुण्यकर्म इकट्ठे होते हैं उसकी प्रीति इन वचनों के सुनने में होती है–अन्यथा नहीं होती। ये वचन परमबोध के कारण हैं। वैराग्यप्रकरण के एक सहस्त्र पाँचसौ श्लोक हैं। हे भारद्वाज! इस प्रकार जब नारदजी ने कहा तब विश्वामित्र बोले कि हे ज्ञानवानों में श्रेष्ठ, रामजी! जितना कुछ जानने योग्य था सो तुमने जाना है इससे अब तुम्हें जानना और नहीं रहा, पर उसमें विश्राम पाने के लिये कुछ मार्जन करना है। जैसे अशुद्ध आदर्श की मलिनता दूर करने से मुख स्पष्ट भासता है वैसे ही कुछ उपदेश की तुमको अपेक्षा है। हे रामजी! आप ही के सदृश भगवान् व्यासजी के पुत्र शुकदेवजी हुए हैं। वह भी बड़े बुद्धिमान थे, उन्होंने जो जानने योग्य था सो जाना था, पर विश्राम के निमित्त उनको भी अपेक्षा थी सो विश्राम को पाकर शान्त हुए थे। इतना सुन रामजी ने पूछा, हे भगवान्! शुकजी कैसे बुद्धिमान और ज्ञानवान् थे और कैसी विश्राम की अपेक्षा उनको थी और फिर कैसे उन्होंने विश्राम पाया सो कृपा करके कहो? विश्वामित्र जी बोले, हे रामजी, अञ्जन के पर्वत के समान और सूर्य के सदृश प्रकाशवान् भगवान् व्यासजी स्वर्ण के सिंहासन पर राजा दशरथ के यहाँ बैठे थे। उनके पुत्र शुकजी सब शास्त्रों के वेत्ता थे। और सत्य को सत्य और असत्य को असत्य जानते थे। उन्होंने शान्ति और परमानन्दरूप आत्मा में विश्राम न पाया तब उनको विकल्प उठा कि जिसको मैंने जाना है सो न होगा। क्योंकि मुझको आनन्द नहीं भासता। यह संशय करके एक काल में व्यासजी जो सुमेरु पर्वत की कन्दरा में बैठे थे तिनके निकट आकर कहने लगे, हे भगवन्! यह संसार सब भ्रमात्मक कहाँ से हुआ है; इसकी निवृत्ति कैसे होगी और आगे कभी इसकी निवृत्ति हुई है सो कहो? हे रामजी! जब इस प्रकार शुकदेवजी ने कहा तब विद्वद्वेदशिरोमणि वेदव्यास ने तत्काल उपदेश किया। शुकजी ने कहा, हे भगवान्! जो कुछ तुम कहते हो वह तो मैं आगे से ही जानता हूँ। इससे मुझको शान्ति नहीं होती। हे रामजी! तब सर्वज्ञ वेदव्यासजी विचार करने लगे कि इसको मेरे वचन से शान्ति प्राप्त न होगी, क्योंकि पिता पुत्र का सम्बन्ध है। ऐसा विचार करके व्यासजी कहने लगे, हे पुत्र! मैं सर्वतत्वज्ञ नहीं, तुम राजा जनक के निकट जाओ, वे सर्वतत्वज्ञ और शान्तात्मा हैं, उनसे तुम्हारा मोह निवृत्त होगा। तब शुकदेवजी वहाँ से चलकर मिथला नगरी में आये और राजा जनक के द्वार पर स्थित हुए। द्वारपाल ने जाकर जनक जी से कहा कि व्यासजी के पुत्र शुकजी खड़े हैं। राजा ने जाना कि इनको जिज्ञासा है। इसलिए कहा कि खड़े रहने दो। इसी प्रकार फिर द्वारपाल ने जा कहा और सात दिन उन्हें खड़े ही बीत गये। तब राजा ने फिर पूछा कि शुकजी खड़े हैं कि चले गये। द्वारपाल ने कहा, खड़े हैं। राजा ने कहा, आगे ले आओ। तब वे उनको आगे ले आये। उस दरवाजे पर भी वे सात दिन खड़े रहे। फिर राजा ने पूछा कि शुकजी हैं? द्वारपाल ने कहा कि खड़े हैं। राजा ने कहा कि अन्तःपुर में ले आओ और नाना प्रकार के भोग भुगताओ। तब वे उन्हें अन्तःपुर में ले गये। वहाँ स्त्रियों के पास भी वे सात दिन तक खड़े रहे। फिर राजा ने द्वारपाल से पूछा कि उसकी अब कैसी दशा है और आगे कैसी दशा थी? द्वारपाल

ने कहा कि आगे वे निरादर से न शोकवान् हुए थे और न अब भोग से प्रसन्न हुए, वे तो इष्ट अनिष्ट में समान है । जैसे मन्द पवन से मेरु चलायमान नहीं होता वैसे ही यह बड़े भोग व निरादर से चलायमान् नहीं हुए जैसे पपीहे को मेघ के जल बिना नदी और ताल आदि के जल की इच्छा नहीं होती वैसे ही उसको भी किसी पदार्थ की इच्छा नहीं है । तब राजा ने कहा उन्हे यहाँ ले आओ । जब शुकजी आये तब राजा जनक ने उठके खड़े हो प्रणाम किया । फिर जब दोनों बैठ गये तब राजा ने कहा कि हे मुनीश्वर! तुम किस निमित्त आये हो, तुमको क्या वाञ्छा है सो कहो उसकी प्राप्ति मैं कर देऊँ? श्रीशुकजी बोले हे गुरो! यह संसार का आडम्बर कैसे उत्पन्न हुआ और कैसे शान्त होगा सो तुम कहो? इतना कह विश्वामित्रजी बोले हे रामजी! जब इस प्रकार शुकदेवजी ने कहा तब जनक ने यथाशास्त्र उपदेश जो कुछ व्यास ने किया था सोई कहा । यह सुन शुकजी ने कहा कि भगवन् जो कुछ तुम कहते हो सोई मेरे पिता भी कहते थे, सोई शास्त्र भी कहता है और विचार से मैं भी ऐसा ही जानता हूँ कि यह संसार अपने चित्त से उत्पन्न होता है और चित्तके निर्वेद होने से भ्रम की निवृत्ति होती है, पर मुझको विश्राम नहीं प्राप्त होता है? जनकजी बोले, हे मुनीश्वर! जो कुछ मैंने कहा और जो तुम जानते हो इससे पृथक उपाय न जानना और न कहना ही है । यह संसार चित्त के संवेदन से हुआ है, जब चित्त फुरने से रहित होता है तब भ्रम निवृत्त हो जाता है । आत्मतत्त्व नित्य शुद्ध; परमानन्दरूप केवल चैतन्य है, जब उसका अभ्यास करोगे तब तुम विश्राम पावोगे । तुम अधिकारी हो, क्योंकि तुम्हारा यत्न आत्मा की ओर है, दृश्य की ओर नहीं, इससे तुम बड़े उदारात्मा हो । हे मुनीश्वर! तुम मुझको व्यासजी से अधिक जान मेरे पास आये हो, पर तुम मुझसे से भी अधिक हो, क्योंकि हमारी चेष्टा तो बाहर से दृष्टि आती है और तुम्हारी चेष्टा बाहर से कुछ भी नहीं, पर भीतर से हमारी भी इच्छा नहीं है । इतना कह विश्वामित्र जी बोले, हे रामजी! जब इस प्रकार राजा जनक ने कहा तब शुकजी ने निःसंग निष्प्रयत्न और निर्भय होकर सुमेरु पर्वत की कन्दरा में जाय दशसहस्त्र वर्ष तक निर्विकल्प समाधि की । जैसे तेल बिना दीपक निर्वाण हो जाता है वैसे ही वे भी निर्वाण हो गये । जैसे समुद्र में बूँद लीन हो जाती है और जैसे सूर्य का प्रकाश सन्ध्याकाल में सूर्य के पास लीन हो जाता है वैसे ही कलनारूप कलंक को त्यागकर वे ब्रह्मपद को प्राप्त हुए ।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे मुमुक्षुप्रकरणे मुनिशुकनिर्वाण–वर्णनन्नाम प्रथमस्सर्गः ॥१॥

अनुक्रम

मुनिविश्वामित्रोपदेश

विश्वामित्रजी बोले हे राजा दशरथ! जैसे शुकजी शुद्धिबुद्धि वाले थे वैसे ही रामजी भी है । जैसे शान्ति के निमित्त उनको कुछ मार्जन कर्तव्य था वैसे ही रामजी को भी विश्राम के निमित्त कुछ मार्जन चाहिए क्योंकि आवरण करनेवाले जो भोग हैं उनसे इनकी इच्छा निवृत्त हुई है और जो कुछ जानने योग्य था सो जाना है । अब हम कोई ऐसी युक्ति करेंगे जिससे इनको विश्राम होगा । जैसे शुकजी को थोड़े से मार्जन से शान्ति की प्राप्ति हुई थी वैसे ही इनको भी होगी । हे राजन्! जैसे ज्ञानवान् को आध्यात्मिक आदि दुःख स्पर्श नहीं करते वैसे ही रामजी को भी भोग की इच्छा नहीं स्पर्श करती । भोग की इच्छा सबको दीन करती है इसी का नाम बन्धन है और भोग की वासना का क्षय करना ही मोक्ष है । ज्यों–ज्यों भोग की इच्छा करता है त्यों–त्यों लघु होता जाता है और ज्यों–ज्यों भोग वासना क्षय होती जाती है त्यों त्यों गरिष्ठ होता है । जब तक आत्मानंद का प्रकाश नहीं होता तब तक विषय की वासना दूर नहीं होती और जब आत्मानन्द प्राप्त होता है तब विषय वासना कोई नहीं रहती । जैसे मरुस्थल में बेलि नहीं उत्पन्न होती वैसे ही ज्ञानवान् को विषयवासना की उत्पत्ति नहीं होती । हे साधो! ज्ञानवान् किसी फल की इच्छा से विषय भोग का त्याग नहीं करता, स्वभाव से ही उसकी विषयवासना चली जाती है । जैसे सूर्य के उदय होने से अन्धकार का अभाव हो जाता है वैसे ही रामजी को अब किसी भोग पदार्थ की इच्छा नहीं रही । अब तो वे विदितवेद हुए हैं अतः विश्राम की इच्छा रखते हैं इससे जो कहो वही करूँ जिससे वे विश्रामवान् हों । हे राजन्! भगवान् वशिष्ठजी की युक्ति से ये शान्त होंगे और आगे से वही रघुवंशकुल के गुरु हैं । उनके आदेश द्वारा आगे भी रघुवंशी ज्ञानवान् हुए हैं । ये सर्वज्ञ और साक्षी रूप हैं और त्रिकालज्ञ और ज्ञान के सूर्य हैं । इनके उपदेश से रामजी आत्मपद को प्राप्त होंगे । हे वशिष्ठजी! जब हमारा तुम्हारा विरोध हुआ था और ब्रह्माजी ने मन्दराचल पर्वत पर, जो ऋषिश्वरों और अनेक वृक्षों से पूर्ण था, संसार वासना के नाश, हमारे तुम्हारे विरोध की शान्ति और अन्य जीवों के कल्याणनिमित्त जो उपदेश किया था वह तुमको स्मरण है? अब वही उपदेश तुम रामजी को करो, क्योंकि ये भी निर्मल ज्ञान पात्र हैं । ज्ञान, विज्ञान और निर्मलयुक्ति वही है जो शुद्धपात्र में अर्पण हो और पात्र बिना उपदेश नहीं सोहता । जिस में शिष्यभाव और विरक्तता न हो ऐसे अपात्र मूर्ख को उपदेश करना व्यर्थ है । कदाचित विरक्त हो और शिष्यभावना नहीं तो भी उपदेश न करना चाहिये । दोनों से सम्पन्न को ही उपदेश करना चाहिये । पात्र बिना उपदेश व्यर्थ है अर्थात् अपवित्र हो जाता है । जैसे गऊ का दूध महापवित्र है पर श्वान की त्वचा में डारिये तो अपवित्र हो जाता है वैसे ही अपात्र को उपदेश करना व्यर्थ है । हे मुनीश्वर! जो शिष्य वैराग्य से सम्पन्न और उदार आत्मा है वह तुम्हारे उपदेश के योग्य है और तुम वीतराग और भय क्रोध से रहित परम शान्तरूप हो, इसलिये तुम्हारे उपदेश के पात्र रामजी हैं । इतना कहकर वाल्मीकिजी बोले कि जब इस प्रकार विश्वामित्र जी ने कहा तब नारद और व्यासादिक ने साधु–साधु कहा अर्थात् भला–भला कहा कि ऐसे ही यथार्थ है । उस समय राजा दशरथ के पास बहुत प्रकार के साधु बैठे थे । ब्रह्माजी के पुत्र वशिष्ठजी ने कहा कि हे मुनीश्वर! जो कुछ तुमने आज्ञा की है वह हमने मानी। ऐसे किसी की सामर्थ्य नहीं कि सन्त की आज्ञा निवारण करे । साधो! राजा दशरथ के जितने पुत्र हैं उन सबके हृदय में जो अज्ञानरूपी तम है वह मैं ज्ञानरूपी सूर्य से ऐसे निवारण करूँगा जैसे सूर्य के प्रकाश से अन्धकार दूर होता है । हे मुनीश्वर! जो कुछ ब्रह्माजी ने उपदेश किया था वह मुझको अखण्ड स्मरण है मैं वही उपदेश करूँगा जिससे रामजी निःसंशय होंगे । इतना कहकर वाल्मीकिजी बोले कि इस प्रकार वशिष्ठजी विश्वामित्र से कह रामजी से मोक्ष का उपाय कहने लगे ।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे मुनिविश्वामित्रोपदेशो नाम द्वितीयस्सर्गः ॥२॥

अनुक्रम

असंख्यसृष्टिप्रतिपादन

वशिष्ठजी बोले हे रामजी! ब्रह्माजी ने मुझको जीवों के कल्याण के निमित्त उपदेश किया था वह मुझे भले प्रकार स्मरण है और वही अब मैं तुमसे कहता हूँ । इतना सुन श्रीरामजी ने पूछा, हे भगवान्! कुछ प्रश्न करने का अवसर आया है । एक संशय मुझको है सो दूर करो । मोक्ष उपाय जो संहिता कहते हो सो तुम सब कहोगे परन्तु यह जो तुमने कहा कि शुकदेवजी विदेहमुक्त हो गये तो भगवान् व्यासजी जो सर्वज्ञ थे सो विदेहमुक्त क्यों न हुए? वशिष्ठजी बोले कि हे रामजी! जैसे सूर्य के किरण के साथ त्रसरेणु उड़ती देख पड़ती हैं और उनकी संख्या नहीं हो सकती वैसे ही परम सूर्य के संवेदनरूपी किरण में त्रिलोकीरूप असंख्य त्रसरेणु हैं अनन्त होकर मिट जाते हैं और अनन्त होते हैं । अनन्त त्रिलोकी ब्रह्म समुद्र में है उनकी संख्या कुछ नहीं । श्रीरामजी ने पूछा, हे भगवन्! पीछे जो व्यतीत हो गये हैं और आगे जो होंगे उनकी कितनी संख्या है? वर्त्तमान को तो मैं जानता हूँ । वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! अनन्त कोटि त्रिलोकी के गण उपजे और मिट गये हैं । कितने ही होते हैं और कितने ही होवेंगे । इनकी कुछ संख्या नहीं है, क्योंकि जीव असंख्य हैं और जीव जीव प्रति अपनी–अपनी–सृष्टि है । जब ये जीव मृतक हो जाते हैं तब उसी स्थान में अपने अन्तवाहक संकल्परूपी पुर में इनको अपना बन्धन भासता है और उसी स्थान में परलोक भास आता है । पृथ्वी, अप, तेज और वायु और आकाश पञ्चभूत भासते हैं और नाना प्रकार की वासना के अनुसार अपनी अपनी सृष्टि भास आती है । फिर जब वहाँसे मृतक होता है तब वहीं फिर सृष्टि भास आती है नाम रूप संयुक्त वही जाग्रत सत्य होकर भास आती है । फिर जब वहाँ से मरता है तब इस पञ्चभूत सृष्टि का अभाव हो जाता है । और दूसरी भासती हैं और वहाँ के जो जीव होते हैं उनको भी इसी प्रकार अनुभव होता है । इसीप्रकार एक एक जीव की सृष्टि होती है और मिट जाती है । इनकी संख्या कुछ नहीं । तब ब्रह्मा की सृष्टि की संख्या कैसे हो? जैसे मनुष्य घूमता है और उसको सर्व पदार्थ भ्रमते दृष्टि आते हैं; जैसे नाव में बैठे हुए नदी के वृक्ष चलते दृष्टि आते हैं; जैसे नेत्र के दोष से आकाश में मोती की माला दृष्टि आती है और जैसे स्वप्ने में सृष्टि भासती है वैसे ही जीव को भ्रम से यह लोक परलोक भासता है । वास्तव में जगत् कुछ उपजा ही नहीं, एक अद्वैत परमात्मा तत्त्व अपने आप में स्थित है उसमें द्वैतभ्रम अविद्या से भासता है । जैसे बालक को अपनी परछाहीं में वैताल भासता है और भय पाता है वैसे ही अज्ञानी को कल्पना जगत्‌रूप होकर भासता है । हे रामजी! व्यासजी को बत्तीस आकार से मैंने देखा है । उनमें दश एक आकार और क्रिया और निश्चयरूप हैं; दश अर्थ समान हुए हैं और बारह आकार क्रिया और चेष्टा में विलक्षण हुए हैं जैसे समुद्र में तरंगे होती हैं तो उनमें कई सम और कई विलक्षण उपजती हैं वैसे ही व्यास हुए हैं । सम जो दश हुए हैं उनमें दशवें व्यास यही हैं और आगे भी आठ बेर यही होंगे और महाभारत कहेंगे । नवीं बेर ब्रह्मा होकर विदेह मुक्त होंगे । हम और वाल्मीकि, भृगु और बृहस्पति का पिता अंगिरा इत्यादि भी विदेह मुक्त होवेंगे । हे रामजी! एक सम होते हैं और एक विलक्षण होते हैं । मनुष्य, देवता, तिर्यगादिक जीव कई बेर समान होते हैं और कितने बेर विलक्षण होते हैं । कितने जीव समान आकार आगे से कुल क्रिया सहित होते हैं । और कितने संकल्प से उड़ते फिरते हैं । आना जाना, जीना, मरना स्वप्न–भ्रम की भाँति दीखता है पर वास्तव में न कोई आता है, न जाता है, न जन्मता है, न मरता । यह भ्रम अज्ञान से भासता है, विचार करने से कुछ नहीं भासता । जैसे कदली का खंभ बड़ा पुष्ट दीखता है, पर खोल के देखो तो कुछ सार नहीं निकलता वैसे ही जगत्–भ्रम अविचार करने से कुछ नहीं भासता । हे रामजी! जो पुरुष आत्मसत्ता में जगा है उसको द्वैतभ्रम नहीं भासता । वह आत्मदर्शी सदा शान्त आत्मा

परमानन्दस्वरूप और इच्छा से रहित है । जैसे जीवन्मुक्त को कोई चला नहीं सकता वैसे ही व्यास-देवजी को सदेह मुक्ति और विदेह-मुक्ति की कुछ इच्छा नहीं, वे तो सदा अद्वैत रूप हैं । वह तो स्वरूप, सार शान्तिरूप, अमृत से पूर्ण और निर्वाण में स्थित है ।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे मुमुक्षुप्रकरणे असंख्यसृष्टिप्रतिपादनन्नाम तृतीयस्सर्गः ॥३॥

अनुक्रम

पुरुषार्थोपक्रम

इतना कहकर वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जीवन्मुक्ति और विदेह–मुक्ति में कुछ भेद नहीं है । जैसे जल स्थिर हैं तो भी जल है और तरंग है तो भी जल है वैसे ही जीवन्मुक्ति और विदेहमुक्ति में कुछ भेद नहीं है । हे रामजी! जीवन्मुक्ति और विदेहमुक्ति का अनुभव तुमको प्रत्यक्ष नहीं भासता, क्योंकि स्वसंवेद है और उनमें जो भेद भासता है सो सम्यकदर्शी को भासता है ज्ञानवान् को भेद नहीं भासता । हे मननकर्त्ताओं में श्रेष्ठ रामजी! जैसे वायु स्पन्दरूप होती है तो भी वायु है और निस्स्पन्द होती है तो भी वायु है, निश्चय करके कुछ भेद नहीं पर और जीव को स्पन्द होती है तो भासती और निस्स्पन्द होती है तो नहीं भासती वैसे ही ज्ञानवान् पुरुष को जीवन्मुक्ति और विदेह मुक्ति में कुछ भेद नहीं, वह सदा अद्वैत निश्चयवाला और इच्छा से रहित है । जब जीव को उसका शरीर भासता है तब जीवन्मुक्ति कहते हैं और जब शरीर अदृश्य होता है तब विदेह मुक्ति कहते हैं । पर उसको दोनों तुल्य है । हे रामजी! अब प्रकृत प्रसंग को जो श्रवण का भूषण है सुनिये । जो कुछ सिद्ध होता है सो अपने पुरुषार्थ से सिद्ध होता है । पुरुषार्थ बिना कुछ सिद्ध नहीं होता । लोग जो कहते हैं कि दैव करेगा सो होगा यह मूर्खता है । चन्द्रमा जो हृदय को शीतल और उल्लासकर्ता भासता है इसमें यह शीतलता पुरुषार्थ से हुई है । हे रामजी! जिस अर्थ की प्रार्थना और यत्न करे और उससे फिरे नहीं तो अवश्य पाता है । पुरुष प्रयत्न किसका नाम है सो सुनिये । सन्तजन और सत्य शास्त्र के उपदेशरूप उपाय से उसके अनुसार चित्त का विचरना पुरुषार्थ (प्रयत्न) है और उससे इतर जो चेष्टा है उसका नाम उन्मत्त चेष्टा है । जिस निमित्त यत्न करता है सोई पाता है । एक जीव पुरुषार्थ (प्रयत्न) करके इन्द्र की पदवी पाकर त्रिलोकी का पति हो सिंहासन पर आरूढ़ हुआ है । हे रामचन्द्र! आत्मतत्त्व में जो चैतन्य संवित है सो संवेदन रूप होकर फुरती है और सोई अपने पुरुषार्थ से ब्रह्म पद को प्राप्त हुई है । इसलिए देखो जिसको कुछ सिद्धता प्राप्त हुई है सो अपने पुरुषार्थ से ही हुई है । केवल चैतन्य आत्मतत्व है । उसमें चित्त संवेदन स्पन्दरूप है । यह चित्त संवेदन ही अपने पुरुषार्थ से गरुड़ पर आरूढ़ होकर विष्णुरूपी होता है और पुरुषोत्तम कहाता है और यही चित्तसंवेदन अपने पुरुषार्थ से रुद्ररूप हो अर्द्धांग में पार्वती, मस्तक में चन्द्रमा और नीलकण्ठ परमशान्तिरूप को धारण करता है इससे जो कुछ सिद्ध होता है सो पुरुषार्थ से ही होता है । हे रामजी! पुरुषार्थ से सुमेरु का चूर्ण किया चाहे तो भी वह भी कर सकता है । यदि पूर्व दिन में दुष्कृत किया हो और अगले दिन में सुकृत करे तो दुष्कृत दूर हो जाता है । जो अपने हाथ से चरणामृत भी ले नहीं सकता वह यदि पुरुषार्थ करे तो वह पृथ्वी को खण्ड–खण्ड करने को समर्थ होता है ।

इति श्रीयोगवाशिषठे मुमुक्षुप्रकरणे पुरुषार्थोपक्रमोनाम चतुर्थस्सर्गः ॥४॥

अनुक्रम

पुरुषार्थवर्णन

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! चित्त जो कुछ वाच्छा करता है और शास्त्र के अनुसार पुरुषार्थ नहीं करता सो सुख न पावेगा, क्योंकि उसकी उन्मत्त चेष्टा है । पौरुष भी दो प्रकार का है–एक शास्त्र के अनुसार और दूसरा शास्त्रविरुद्ध । जो शास्त्र त्याग करके अपनी इच्छा के अनुसार विचरता है सो सिद्धता न पावेगा और जो शास्त्र के अनुसार पुरुषार्थ करेगा वह सिद्धता को प्राप्त होगा, कदाचित दुःख न पावेगा । अनुभव से स्मरण होता है और स्मरण से अनुभव होता है, यह दोनों इसी से होते हैं । दैव तो कुछ न हुआ । हे रामजी! और दैव कोई नहीं, उसका किया ही इसको प्राप्त होता है, परन्तु जो बलिष्ठ होता है उसी के अनुसार विचरता है । जिसके पूर्व के संस्कार बली होते हैं उसी की जय होती है और विद्यमान पुरुषार्थ बली होता है तब उसको जीत लेता है । जैसे एक पुरुष के दो पुत्र हैं तो वह उन दोनों को लड़ाता है पर दोनों में से जो बली होता है उसी की जय होती है, परन्तु दोनों उसी के हैं वैसे ही दोनों कर्म इसके हैं जिसका पूर्व का संस्कार बली होता है उसी की जय होती है । हे रामजी! यह जीव जो सत्संग करता है और सत्शास्त्र को भी विचारता है पर फिर भी पक्षी के समान जो संसारवृक्ष की ओर उड़ता है तो पूर्व का संस्कार बली है उससे स्थिर नहीं हो सकता । ऐसा जानकर पुरुष प्रयत्न का त्याग न करे । पूर्व के संस्कार से अन्यथा नहीं होता, परन्तु पूर्व का संस्कार बली भी हो और सत्संग करे और सत्शास्त्र भी दृढ़ अभ्यास हो तो पूर्व के संस्कार को पुरुष प्रयत्न से जीत लेता है । जैसे पूर्व के संस्कार से दुष्कृत किया है और आगे सुकृत करे तो पिछले का अभाव हो जाता है सो पुरुष प्रयत्न से ही होता है । पुरुषार्थ क्या है और उससे क्या सिद्ध होता है सो श्रवण करिये । ज्ञानवान् जो सन्त हैं और सत्शास्त्र जो ब्रह्मविद्या है उसके अनुसार प्रयत्न करने का नाम पुरुषार्थ है और पुरुषार्थ से पाने योग्य आत्मा है जिससे संसारसमुद्र से पार होता है । जो कुछ सिद्ध होता है सो अपने पुरुषार्थ से ही सिद्ध होता है–दूसरा कोई दैव नहीं । जो शास्त्र के अनुसार पुरुषार्थ को त्याग कर कहता है कि जो कुछ करेगा सो दैव करेगा वह मनुष्य नहीं गर्दभ है उसका संग करना दुःख का कारण है । मनुष्य को प्रथम तो यह करना चाहिये कि अपने वर्णाश्रम के शुभ आचारों को ग्रहण करे और अशुभ का त्याग करे । फिर संतो का संग और सत्शास्त्रों का विचारना और उनको विचारकर अपने गुण दोष को भी विचार करना चाहिये कि दिन और रात्रि में क्या शुभ और अशुभ किया है । आगे फिर गुण और दोषों का भी साक्षीभूत होकर जो संतोष, धैर्य, विराग विचार और अभ्यास आदि गुण है उनको बढ़ावे और जो दोष हों उनका त्याग करे । जब ऐसे पुरुषार्थ को अंगीकार करेगा तब परमानन्दरूप आत्मतत्त्व को पावेगा । इससे हे रामजी! जैसे वन का मृग घास, तृण और पत्तों को रसीला जानके खाता है वैसे ही स्त्री, पुत्र, बान्धव, धनादि में मग्न होना चाहिये । इनसे विरक्त होना और दाँतों से दाँतों को चबाकर संसारसमुद्र के पार होने का यत्न करना चाहिये । जैसे केसरी सिंह बल करके पिंजरे में से निकल जाता है वैसे ही निकल जाने का नाम पुरुषार्थ है । हे रामजी! जिसको कुछ सिद्धता की प्राप्ति हुई है उसे पुरुषार्थ से ही हुई है, पुरुषार्थ बिना नहीं होती जैसे प्रकाश बिना किसी पदार्थ का ज्ञान नहीं होता । जिस पुरुष ने अपना पुरुषार्थ त्याग दिया है और दैव के आश्रय हो यह समझता है कि हमारा दैव कल्याण करेगा वह कभी सिद्ध नहीं होगा जैसे पत्थर से तेल निकालना चाहे तो नहीं निकलता वैसे ही उसका कल्याण दैव से न होगा । इसलिये हे रामजी! तुम दैव का आश्रय त्यागकर अपने पुरुषार्थ का आश्रय करो । जिसने अपना पुरुषार्थ त्यागा है उसको सुन्दर कान्ति और लक्ष्मी त्याग जाती है । जैसे वसन्त ऋतु की मञ्जरी बसन्त ऋतु के जाने से बिरस हो जाती है वैसे ही उनकी कान्ति लघु हो जाती है । जिस पुरुष ने ऐसा निश्चय किया है कि हमारा

पालनेवाला दैव है वह पुरुष ऐसा है जैसे कोई अपनी भुजा को सर्प जान भय खाके दौड़ता है भय पाता है । पुरुषार्थ यह है कि सन्त का संग और सत्शास्त्रों का विचार करके उनके अनुसार विचरे जो उनको त्याग के अपनी इच्छा के अनुसार विचरते हैं सो सुख और सिद्धता न पावेंगे और जो शास्त्र के अनुसार विचरते हैं वह इस लोक और परलोक में सुख और सिद्धता पावेंगे । इससे संसाररूपी जाल में न गिरना चाहिये । पुरुषार्थ वही है कि सन्तजनों का संग करना और बोधरुपी कमल और विचाररूपी स्याही से सत्शास्त्रों के अर्थ हृदयरूपी पत्र पर लिखना । जब ऐसे पुरुषार्थ करके लिखोगे तब संसाररूपी जाल में न गिरोगे । हे रामजी! जैसे यह पहले नियत हुआ है कि जो पट है सो पट है; जो घट है सो घट ही है; जो घट है सो पट नहीं और जो पट है सो घट नहीं वैसे ही यह भी नियत हुआ है कि अपने पुरुषार्थ बिना परमपद की प्राप्ति नहीं होती । हे रामजी! जो संतो की संगति करता है और सत्शास्त्र भी विचारता है पर उनके अर्थ में पुरुषार्थ नहीं करता उसको सिद्धता नहीं प्राप्त होती । जैसे कोई अमृत के निकट बैठा हो तो पान किये बिना अमर नहीं होता वैसे ही अभ्यास किये बिना अमर नहीं होता और सिद्धता भी प्राप्त नहीं होती । हे रामजी! अज्ञानी जीव अपना व्यर्थ खोते हैं । जब बालक होते हैं तब मूढ़ अवस्था में लीन रहते हैं युवावस्था में विकार को सेवते हैं और जरा में जर्जरीभूत होते हैं । इसी प्रकार जीवन व्यर्थ खोते हैं और जो अपना पुरुषार्थ त्याग करके दैव का आश्रय लेते हैं सो अपने हन्ता होते हैं वह सुख न पावेंगे । हे रामजी! जो पुरुष व्यवहार और परमार्थ में आलसी होके और परमार्थ को त्याग के मूढ़ हो रहे हैं सो दीन होकर पशुओं के सदृश दुःख को प्राप्त हुए हैं । यह मैंने विचार करके देखा है । इससे तुम पुरुषार्थ का आश्रय करो और सत्संग और सत्शास्त्ररूपी आदर्श के द्वारा अपने गुण और दोष को देख के दोष का त्याग करो और शास्त्रों के सिद्धान्तों पर अभ्यास करो । जब दृढ़ अभ्यास करोगे तब शीघ्र ही आनन्दवान् होगे । इतना कह कर वाल्मीकिजी बोले कि जब इस प्रकार वशिष्ठजी ने कहा तब सायंकाल का समय हुआ तो सब सभा स्नान के निमित्त उठ खड़ी हुई और परस्पर नमस्कार करके अपने अपने घर को गये और सूर्य की किरणों के निकलते ही सब आ फिर स्थिर भये ।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे मुमुक्षु प्रकरणे पुरुषार्थवर्णनन्नाम पञ्चमस्सर्गः ॥५॥

अनुक्रम

परमपुरुषार्थ वर्णन

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! इसका जो पूर्व का किया पुरुषार्थ है उसी का नाम दैव है, और दैव कोई नहीं । जब यह सत्संग और सत्शास्त्र का विचार पुरुषार्थ से करे तब पूर्व के संस्कार को जीत लेता है । जिस इष्ट पुरुष के पाने का यह शास्त्र द्वारा यत्न करेगा उसको अवश्यमेव अपने पुरुषार्थ से पावेगा अन्यथा कुछ नहीं होता, न हुआ है और न होगा । पूर्व जो पाप किया होता है उसका जब फल दुःख पाता है तो मूर्ख कहता है कि हा दैव, हा देव, हा कष्ट, हा कष्ट । हे रामजी! इसका जो पूर्व का पुरुषार्थ है उसी का नाम दैव है और दैव कोई नहीं । जो कोई दैव कल्पते हैं सो मूर्ख हैं । जो पूर्व जन्म में सुकृत कर आया है वही सुकृत सुख होके दिखाई देता है और जिसका पूर्व का सुकृत बली होता है उसी की जय होती है । जो पूर्व का दुष्कृत होता है और शुभ का पुरुषार्थ करता है और सत्संग और सत्शास्त्र को भी विचारता, सुनता और करता है तो पूर्व के संस्कार को जीत लेता है । जैसे पहिले दिन पाप किया हो और दूसरे दिन बड़ा पुण्य करे तो पूर्व का पाप निवृत हो जाता है वैसे ही जब यहाँ दृढ़ पुरुषार्थ करे तो पूर्व के संस्कार को जीत लेता है । इससे जो कुछ सिद्ध होता है सो पुरूषार्थ से ही सिद्ध होता है । एकत्रभाव से प्रयत्न करने का नाम पुरुषार्थ है जो एकत्रभाव से यत्न करेगा उसको अवश्यमेव प्राप्त होगा और जो पुरुष दैव को जानके अपना पुरुषार्थ त्याग बैठेगा तो दुःख पाकर शान्तिमान् कभी न होगा । हे रामजी! मिथ्या दैव के अर्थ को त्याग के तुम अपने पुरुषार्थ को अंगीकार करो । सन्तजनों और सत्शास्त्रों के वचनों और युक्तिसहित यत्न और अभ्यास करके आत्मपद को प्राप्त होने का नाम पुरुषार्थ है । जैसे प्रकाश से पदार्थ का ज्ञान होता है वैसे ही पुरुषार्थ से आत्मपद की प्राप्ति होती है जो पूर्व कर्मानुसार बड़ा पापी होता है तो यहाँ दृढ़ पुरुषार्थ करने से उसको जीत लेता है । जैसे बड़े मेघ को पवन नाश करता है और जैसे वर्ष दिन के पके खेत को बरफ नाश कर देती है वैसे ही पुरुष का पूर्वसंस्कार प्रयत्न से नष्ट होता है । हे रामजी! श्रेष्ठ पुरुष वही है जिसने सत्संग और सत्शास्त्र द्वारा बुद्धि को तीक्ष्ण करके संसार समुद्र से तरने का पुरुषार्थ किया है । जिसने सत्संग और सत्शास्त्र द्वारा बुद्धि तीक्ष्ण नहीं की और पुरुषार्थ को त्याग बैठा है वह पुरुष नीच से नीच गति को पावेगा । जो श्रेष्ठ पुरुष हैं वे अपने पुरुषार्थ से परमानन्द पद को पावेंगे, जिसके पाने से फिर दुःखी न होंगे । जो देखने में दीन होता है वह भी सत्संगी और सत्शास्त्र के अनुसार पुरुषार्थ करता है तो उत्तम पदवी को प्राप्त होता दीखता है । हे रामजी! जिस पुरुष ने पुरुष प्रयत्न किया है उसको सब सम्पदा आ प्राप्त होती है और परमानन्द से पूर्ण रहता है । जैसे समुद्र रत्न से पूर्ण है वैसे ही वह भी परमानन्द से पूर्ण होता है । इससे जो श्रेष्ठ पुरुष हैं वे अपने पुरुषार्थ द्वारा संसार के बन्धन से निकल जाते हैं जैसे केसरी सिंह अपने बल से पिंजर में से निकल जाता है । हे रामजी! यह पुरुष और कुछ न करे तो यह तो अवश्य करे कि अपने वर्णाश्रम के अनुसार विचरे और साथ ही पुरुषार्थ करे । जब सन्त और सत्शास्त्र के आश्रय होके उसके अनुसार पुरुषार्थ करेगा तब सब बन्धन से मुक्त होगा । जिस पुरुष ने अपने पुरुषार्थ का त्याग किया है और किसी और दैव को मानके कहता है कि वह मेरा कल्याण करेगा सो जन्ममरण को प्राप्त होकर शान्तिमान् कभी न होगा । हे रामजी! इस जीव को संसाररूपी विसूचिका रोग लगा है । उसको दूर करने का उपाय मैं कहता हूँ । सन्तजनों और सत्शास्त्रों के अर्थ में दृढ़ भावना करके जो कुछ सुना है उसका बारंबार अभ्यास करके और सब कल्पनात्याग के एकान्त होकर उसका चिन्तन करे तब परमपद की प्राप्ति होगी और द्वैत भ्रम निवृत्त होकर अद्वैतरूप भासेगा । इसी का नाम पुरुषार्थ है ।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे मुमुक्षुप्रकरणे परमपुरुषार्थ वर्णनन्नाम षष्ठस्सर्गः ॥६॥

अनुक्रम

पुरुषार्थोपमावर्णन

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! पुरुषार्थ बिना इसको आध्यात्मिक आदि ताप आ प्राप्त होते हैं उससे शान्ति नहीं पाता। तुम भी रोगी न होना, अपने पुरुषार्थ द्वारा जन्म मरण के बन्धन से मुक्त होना, कोई दैव मुक्ति नहीं करेगा। अपने पुरुषार्थ द्वारा ही संसार बन्धन से मुक्त होता है। जिस पुरुष ने अपने पुरुषार्थ का त्याग किया है और किसी और दैव को मानकर उसके आश्रित हुआ है उसके धर्म, अर्थ और काम सभी नष्ट हो जाते हैं और नीच से नीच गति को प्राप्त होता है। हे रामजी! शुद्ध चैतन्य जो इसका अपना आप वास्तवरूप है उसके आश्रय जो आदि चित्त संवेदन स्फूर्ति है सो अहं ममत्व संवेदन होके फुरने लगती है। इन्द्रियाँ भी अहंता से स्फूर्ति हैं जब यह स्फुरना सन्तों और शास्त्रों के अनुसार हो तब पुरुष परम शुद्धता को प्राप्त होता है और जो शास्त्र के अनुसार न तो वासना के अनुसार भाव अभावरूप भ्रमजाल में पड़ा घटीयन्त्र की नाईं भटककर शान्तिमान् कभी नहीं होता। हे रामजी! जिस किसी को सिद्धता प्राप्त हुई है अपने पुरुषार्थ से ही हुई है। बिना पुरुषार्थ सिद्धता को प्राप्त न होगा। जब किसी पदार्थ को ग्रहण करना होता है तो भुजा पसारे से ही ग्रहण करना होता है और जो किसी देश को जाना चाहे तो चलने से ही पहुँचता है अन्यथा नहीं। इससे पुरुषार्थ बिना कुछ सिद्ध नहीं होता। जो कहता है कि जो दैव करेगा सो होगा वह मूर्ख है। हे रामजी! दैव कोई नहीं है। इस पुरुषार्थ का ही नाम दैव है। यह दैव शब्द मूर्खों का प्रचार किया हुआ है कि जब किसी कष्ट से दुःख पाते हैं तो कहते हैं कि दैव का किया है। पर कोई दैव नहीं है। हे रामचन्द्रजी! जो अपना पुरुषार्थ त्याग के दैव के आश्रय हो रहेगा वह कभी सिद्धता को न प्राप्त होगा, क्योंकि अपने पुरुषार्थ बिना सिद्धता किसी को प्राप्त नहीं होती। जब बृहस्पति ने दृढ़ पुरुषार्थ किया तब सर्व देवताओं के राजा इन्द्र के गुरु हुए शुक्रजी अपने पुरुषार्थ द्वारा सब दैत्यों के गुरु हुए है। जो समान जीव हैं उनमें जिस पुरुष ने प्रयत्न किया है सो पुरुष उत्तम हुआ है। जिसको जितनी सिद्धता प्राप्त हुई है अपने पुरुषार्थ से ही हुई है। जिस पुरुष ने सन्तों और शास्त्रों के अनुसार पुरुषार्थ नहीं किया उसका बड़ा राज्य, प्रजा, धन और विभूति मेरे देखते ही देखते क्षीण हो गई और नरक में गया है। जिससे कुछ अर्थ सिद्ध हो उसका नाम पुरुषार्थ है और जिससे अनर्थ की प्राप्ति हो उसका नाम अपुरुषार्थ है। हे रामजी! मनुष्य को सत्‌शास्त्रों और सन्तसंग से शुभ गुणों को पुष्ट करके दया, धैर्य, सन्तोष और वैराग्य का अभ्यास करना चाहिये। जैसे बड़े ताल से मेघ पुष्ट होता है और फिर वर्षा करके ताल को पुष्ट करता है वैसे ही शुभ गुणों से बुद्धि पुष्ट होती है और शुद्ध बुद्धि से शुभ गुण पुष्ट होते हैं। हे रामजी! जो बालक अवस्था से अभ्यास किये होता है उसको सिद्धता प्राप्त होती है अर्थात् दृढ़ अभ्यास बिना सिद्धता प्राप्त नहीं होती। जो किसी देश अथवा तीर्थ को जाना चाहे तो मार्ग में निरालस होके चला जावे तभी जा पहुँचेगा। जब भोजन करेगा तभी क्षुधा निवृत्त होगी अन्यथा न होगी। जब मुख में जिह्वा शुद्ध होगी तभी पाठ स्पष्ट होगा--गूँगे से पाठ नहीं होता। इसलिये जो कुछ कार्य सिद्ध होता है सो अपने पुरुषार्थ से ही सिद्ध होता है; चुप हो जाने से कोई कार्य सिद्ध नहीं होता। यहाँ सब गुरु बैठे हैं इनसे पूछ देखो; आगे जो तुम्हारी इच्छा हो सो करो और जो मुझसे पूछो तो मैं सब शास्त्रों का सिद्धान्त कहता हूँ जिससे सिद्धता को प्राप्त होगे। हे रामजी! सन्तों अर्थात् ज्ञानवान् पुरुषों और सत्‌शास्त्रों अर्थात् ब्रह्मविद्या के अनुसार संवेदन मन और इन्द्रियों का विचार रखना और जो इनसे विरुद्ध हों उनको न करना। इससे तुमको संसार का राग-द्वेष स्पर्श न करेगा और सबसे निर्लेप रहोगे। जैसे जल से कमल निर्लेप रहता है वैसे ही तुम भी निर्लेप रहोगे। हे रामजी! जिस पुरुष से शान्ति प्राप्ति हो उसकी भली प्रकार सेवा करनी चाहिये, क्योंकि

उसका बड़ा उपकार है कि संसार समुद्र से निकाल लेता है । हे रामजी! सन्तजन और सत्शास्त्र भी वही हैं जिनके विचार और संगति से संसार से चित्त उसकी ओर हो और मोक्ष का उपाय वही है जिससे और सब कल्पना को त्याग के अपने पुरुषार्थ को अंगीकार करे जिसने जन्ममरण का भय निवृत्त हो जावे । हे रामजी! जिस वस्तु की जीव वाच्छा करता है और उसके निमित्त दृढ़ पुरुषार्थ करता है तो अवश्य वह उसको पाता है । बड़े तेज और विभूति से सम्पन्न जो तुमको दृष्टि आता और सुना जाता है वह अपने पुरुषार्थ से ही हुआ है और जो महा निकृष्ट सर्प, कीट आदिक तुमको दृष्टि आते हैं उन्होंने अपने पुरुषार्थ का त्याग किया है तभी ऐसे हुए हैं । हे रामजी! अपने पुरुषार्थ का आश्रय करो नहीं तो सर्प कीटादिक नीच योनि को प्राप्त होगे । जिस पुरुष ने अपना पुरुषार्थ त्यागा और किसी दैव का आश्रय है वह महामूर्ख है, क्योंकि वह वार्ता व्यवहार में भी प्रसिद्ध है कि अपने उद्यम किये बिना किसी पदार्थ की प्राप्ति नहीं होती तो परमार्थ की प्राप्ति कैसे हो । इससे परमपद पाने के निमित्त दैव को त्यागकर सन्तजनों और सत्शास्त्रों और सत्शास्त्रों के अनुसार यत्न करो जो दुःख है वे दूर होवेंगे । हे रामजी! जनार्दन विष्णुजी अवतार धारण करके दैत्यों को मारते हैं और अन्य चेष्टा भी करते हैं परन्तु उनको पाप का स्पर्श नहीं होता, क्योंकि वे अपने पुरुषार्थ से ही अक्षयपद को प्राप्त हुए हैं । इससे तुम भी पुरुषार्थ का आश्रय करो और संसार समुद्र से तर जावो ।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे मुमुक्षुप्रकरणे पुरुषार्थोपमावर्णनन्नाम सप्तमस्सर्गः ॥७॥

अनुक्रम

पुरुषार्थोपमावर्णन

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! यह जो शब्द है कि "दैव हमारी रक्षा करेगा" सो किसी मूर्ख की कल्पना है । हमको तो दैव का आकार कोई दृष्टि नहीं आता और न कोई दैव का आकार ही जान पड़ता है और न दैव कुछ करता ही है । मूर्ख लोग दैव–दैव कहते हैं, पर दैव कहते हैं, पर दैव कोई नहीं है, इसका पूर्व का कर्म ही दैव है । हे रामजी! जिस पुरुष ने अपने पुरुषार्थ का त्याग किया है और दैवपरायण हुआ है कि वह हमारा कल्याण करेगा वह मूर्ख है, क्योंकि अग्नि में जा पड़े और दैव निकाल ले तब जानिये कि कोई दैव भी है, पर सो तो नहीं होता । स्नान, दान, भोजन आदिक त्याग करके चुप हो बैठे और आप ही दैव कर जावे सो भी किये बिना नहीं होता इससे दैव कोई नहीं, अपना पुरुषार्थ ही कल्याणकर्ता है । हे राम जी! जीव का किया कुछ नहीं होता और दैव ही करने वाला होता तो शास्त्र और गुरु का उपदेश भी न होता । इससे स्पष्ट है कि सत्शास्त्र के उपदेश से अपने द्वारा इसको वाञ्छित पदवी प्राप्त होती है इससे और जो कोई दैव है सो व्यर्थ है । इस भ्रम को त्याग करके सन्तों और शास्त्रों के अनुसार पुरुषार्थ करे तब दुःख से मुक्त होगा । हे रामजी! और दैव कोई नहीं है इसका पुरुषार्थ जो स्पन्द है सोई दैव है, हे रामजी! जो कोई और दैव करनेवाला होता तो जब जीव शरीर को त्यागता है और शरीर नष्ट हो जाता है––कुछ क्रिया नहीं होती क्योंकि चेष्टा करनेवाला त्याग जाता है तब भी शरीर से चेष्टा कराता सो तो चेष्टा कुछ नहीं होती, इससे जाना जाता है कि दैव शब्द व्यर्थ है । हे रामजी! पुरुषार्थ की वार्ता अज्ञानी जीव को भी प्रत्यक्ष है कि अपने पुरुषार्थ बिना कुछ नहीं होता । गोपाल भी जानता है कि मैं गौओं को न चराऊँ तो भूखी ही रहेंगी । इससे वह और दैव के आश्रय नहीं बैठ रहता, आप ही चरा ले आता है । हे रामजी! दैव की कल्पना भ्रम से करते हैं । हमको तो दैव कोई दृष्टि नहीं आता और हाथ, पाँव, शरीर भी दैव का कोई दृष्टि नहीं आता । अपने पुराषार्थ से ही सिद्धता दृष्टि आती है । जो कोई आकार से रहित दैव कल्पिये तो भी नहीं बनता, क्योंकि निराकार और साकार का संयोग कैसे हो । हे रामजी! दैव कोई नहीं है केवल अपना पुरुषार्थ ही दैवरूप है । जो राजा ऋद्धि सिद्धि संयुक्त भासता है सो भी अपने पुरुषार्थ से ही हुआ है । हे रामजी! ये जो विश्वामित्र हैं, इन्होंने दैव शब्द दूर ही से त्याग दिया है । ये भी अपने पुरुषार्थ से ही क्षत्रिय से ब्राह्मण हुए हैं और भी जो बड़े–बड़े विभूतिमान् हुए हैं सो भी अपने पुरुषार्थ से ही दृष्टि आते हैं । हे रामजी! जो दैव पढ़े बिना पण्डित करे तो जानिये दैव ने किया, पर पढ़े बिना तो पण्डित नहीं होता । जो अज्ञानी से ज्ञानवान् होते हैं सो भी अपने पुरुषार्थ से ही होते हैं । इससे दैव कोई नहीं । मिथ्या भ्रम को त्यागकर सन्त जनों और सत्शास्त्रों के अनुसार संसारसमुद्र तरने का प्रयत्न करो । तुम्हारे पुरुषार्थ बिना दैव कोई नहीं । जो और दैव होता तो बहुत बेर कियावाला भी अपनी क्रिया को त्याग के सो रहता कि दैव आप ही करेगा, पर ऐसे तो कोई नहीं करता । इससे अपने पुरुषार्थ बिना कुछ सिद्ध नहीं होता । जो कुछ इसका किया न होता तो पाप करनेवाले नरक न जाते और पुण्य करनेवाले स्वर्ग न जाते परन्तु पाप करने वाले नरक में जाते हैं और पुण्य करनेवाले स्वर्ग में जाते हैं; इससे जो कुछ प्राप्त होता है सो अपने पुरुषार्थ से ही होता है । हे रामजी! जो कोई ऐसा कहे कि कोई दैव करता है तो उसका शिर काटिये जो वह दैव के आश्रय जीता रहे तो जानिये कि कोई दैव है, पर सो तो जीता कोई भी नहीं । इससे दैव शब्द को मिथ्या भ्रम जानके सन्त जनों और सत्शास्त्रों के अनुसार अपने पुरुषार्थ से आत्मपद में स्थित हो ।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे मुमुक्षुप्रकरणे परमपुरुषार्थ वर्णनन्नामष्टमस्सर्गः ॥ ८ ॥

अनुक्रम

परमपुरुषार्थवर्णन

इतना सुनकर रामजी ने पूछा, हे भगवान् सर्वधर्म के वेत्ता! आप कहते हैं कि दैव कोई नहीं परन्तु इस लोक में प्रसिद्ध है कि ब्रह्मा भी दैव है और दैव का किया सब कुछ होता है । वशिष्ठजी बोले हे रामजी! मैं तुमको इसलिए कहता हूँ कि तुम्हारा भ्रम निवृत्त हो जावे । अपने ही किये हुए शुभ अथवा अशुभकर्म का फल अवश्यमेव भोगना होता है, उसे दैव कहो वा पुरुषार्थ कहो और दैव कोई नहीं । कर्त्ता, क्रिया, कर्म आदिक में तो दैव कोई नहीं और न कोई दैव का स्थान ही है और न रूप ही है तो और दैव क्या कहिये । हे रामजी! मूर्खों के परचाने के निमित्त दैव शब्द कहा है । जैसे आकाश शून्य है वैसे दैव भी शून्य है । फिर रामजी बोले हे भगवान् सर्वधर्म के वेत्ता! तुम कहते हो कि और दैव कोई नहीं और आकाश की नाईं शून्य है सो तुम्हारे कहने से भी दैव सिद्ध होता है । तुम कहते हो कि इसके पुरुषार्थ का नाम दैव है और जगत् में भी दैव शब्द प्रसिद्ध है । वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! मैं इसलिए तुमको कहता हूँ कि जिससे दैव शब्द तुम्हारे हृदय से उठ जावे । दैव नाम अपने पुरुषार्थ का है, पुरुषार्थ कर्म का नाम है और कर्म नाम वासना का है । वासना मन से होती है और मनरूपी पुरुष जिसकी वासना करता है सोई उसको प्राप्त होती है । जो गाँव के प्राप्त होने की वासना करता है सो गाँव को प्राप्त होता है और जो घाट की वासना करता सो घाट को प्राप्त होता है । इससे और दैव कोई नहीं । पूर्व का जो शुभ अथवा अशुभ दृढ़ पुरुषार्थ किया है उसका परिणाम सुख दुःख अवश्य होता है और उसी का नाम दैव है । हे रामजी! तुम विचार करके देखो कि अपना पुरुषार्थ कर्म से भिन्न नहीं है तो सुख दुःख देनेवाला कोई दैव नहीं हुआ । जीव जो पाप की वासना और शास्त्रविरुद्ध कर्म करता है सो क्यों करता है? पूर्व के दृढ़ पुरुषार्थ कर्म से ही पाप करता है । जो पूर्व का पुण्यकर्म किया होता तो शुभमार्ग में विचरता । फिर रामजी ने पूछा, हे भगवन्! जो पूर्व की दृढ़ वासना के अनुसार यह विचरता है तो मैं क्या करूँ? मुझको पूर्व की वासना ने दीन किया है अब मुझको क्या करना चाहिए? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जो कुछ पूर्व की वासना दृढ़ हो रही है उसके अनुसार जीव विचरता है पर जो श्रेष्ठ मनुष्य है सो अपने पुरुषार्थ से पूर्व के मलिन संस्कारों को शुद्ध करता है तो उसके मल दूर हो जाते हैं । जब तुम सत्शास्त्रों और ज्ञानवानों के वचनों के अनुसार दृढ़ पुरुषार्थ करोगे तब मलिन वासना दूर हो जावेगी । हे रामजी! पूर्व के मलिन और शुभ संस्कारों को कैसे जानिये सो सुनो । जो चित्त विषय और शास्त्र विरुद्ध मार्ग की ओर जावे और शुभ की ओर न जावे तो जानिये कि कोई पूर्व का कर्म मलीन है, जो सन्तजनों और सत्शास्त्रों के अनुसार चेष्टा करे और संसारमार्ग से विरक्त हो तो जानिये कि पूर्व का शुभकर्म है । इससे हे रामजी! तुमको दोनों से सिद्धता है कि पूर्व का संस्कार शुद्ध है इससे तुम्हारा चित्त सत्संग और सत्शास्त्रों के वचनों को ग्रहण करके शीघ्र ही आत्मपद को प्राप्त होगा और जो तुम्हारा चित्त शुभमार्ग में स्थिर नहीं हो सकता तो दृढ़ पुरुषार्थ करके संसारसमुद्र से पार हो । हे रामजी! तुम चैतन्य हो, जड़ तो नहीं हो, अपने पुरुषार्थ का आश्रय करो और मेरा भी यही आशीर्वाद है कि तुम्हारा चित्त शीघ्र ही शुद्ध आचरण और ब्रह्म विद्या के सिद्धान्तसार में स्थित हो । हे रामजी! श्रेष्ठ पुरुष भी वही है जिसका पूर्व का संस्कार यद्यपि मलीन भी था, परन्तु संतों और सत्शास्त्रों के अनुसार दृढ़ पुरुषार्थ करके सिद्धता को प्राप्त हुआ है और मूर्ख जीव वह है जिसने अपना पुरुषार्थ त्याग दिया है जिससे संसार से मुक्त नहीं होता । पूर्व का जो कोई पापकर्म किया होता है उसकी मलिनता से पाप में धावता है और अपने पुरुषार्थ के त्यागने से अन्धा होकर विशेष धावता है । जो श्रेष्ठ पुरुष है उसको यह करना चाहिए कि प्रथम तो पाँचों इन्द्रियों को वश करे फिर शास्त्र के अनुसार उनको बर्त्तावे और

शुभ वासना दृढ़ करे, अशुभ का त्याग करे । यद्यपि त्यागनीय दोनों वासना हैं पर प्रथम शुभ वासना को इक ी करे फिर अशुभ त्याग करे । जब शुद्ध वासना करके कषाय परिपक्व होगा अर्थात् अन्तःकरण जब शुद्ध होगा तब सन्तों और सत्शास्त्रों के सिद्धान्त का विचार उत्पन्न होगा और उससे तुमको आत्मज्ञान की प्राप्ति होगी । उस ज्ञान के द्वारा आत्मसाक्षात्कार होगा, फिर क्रिया और ज्ञान का भी त्याग हो जावेगा और केवल शुद्ध अद्वैतरूप अपना आप शेष भासेगा । इससे हे रामजी! और सब कल्पना का त्याग कर सन्तजनों और सत्शास्त्रों के अनुसार पुरुषार्थ करो ।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे मुमुक्षुप्रकरणे परमपुरुषार्थवर्णनन्नाम नवमस्सर्गः ॥ ९ ॥

अनुक्रम

वशिष्ठोपदेशगमन

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! मेरे वचनों को ग्रहण करो । यह वचन बान्धव के समान हैं अर्थात् तुम्हारे परम मित्र होंगे और दुःख से तुम्हारी रक्षा करेंगे । हे रामजी! यह जो मोक्ष उपाय तुमसे कहता हूँ उसके अनुसार तुम पुरुषार्थ करो तब तुम्हारा परम अर्थ होगा । यह चित्त जो संसार के भोग की ओर जाता है उस भोगरूपी खाईं में चित्त को गिरने मत दो । भोग के बिसर जाने के त्याग दो हैं । वह त्याग तुम्हारा तुम्हारा परम मित्र होगा और त्याग भी ऐसा करो कि फिर उसका ग्रहण न हो । हे रामजी! यह मोक्ष उपाय संहिता है इसे चित्त को एकाग्र करके सुनो, इससे परमानन्द की प्राप्ति होगी । प्रथम शम और दम को धारण करो । सम्पूर्ण संसार की वासना त्याग करके उदारता से तृप्त रहने का नाम शम है और बाह्य इन्द्रियों के वश करने को दम कहते हैं । जब प्रथम इनको धारण करोगे तब परमतत्त्व विचार आप ही उत्पन्न होगा और विचार से विवेक द्वारा परमपद की प्राप्ति होगी । जिस पद को पाकर फिर कदाचित् दुःख न होगा और अविनाशी सुख तुमको प्राप्त होगा । इसलिये इस मोक्ष उपाय संहिता के अनुसार पुरुषार्थ तब आत्मपद को प्राप्त होगे । पूर्व जो कुछ ब्रह्माजी ने हमको उपदेश दिया है सो मैं तुमसे कहता हूँ । इतना सुनकर रामजी बोले, हे मुनीश्वर! आपको जो ब्रह्मा जी ने उपदेश किया था सो किस कारण किया था और कैसे आपने धारण किया था सो कहो? वशिष्ठजी बोले, हे रामचन्द्रजी! शुद्ध चिदाकाश एक है और अनन्त, अविनाशी, परमानन्द रूप चिदानन्द–स्वरूप ब्रह्म है उसमें संवेदन स्पन्दरूप होता है वही विष्णु होकर स्थित हुआ है । वे विष्णुजी स्पन्द और निस्स्पन्द में एक कदाचित् अन्यथा भाव को नहीं प्राप्त होते । जैसे समुद्र में तरंग उपजते हैं वैसे ही शुद्ध चिदाकाश से स्पन्द करके विष्णु उत्पन्न हुए हैं । उन विष्णुजी के स्वर्णवत् नाभिकमल से ब्रह्मा जी प्रकट हुए । उन ब्रह्माजी ने ऋषि और मुनीश्वरों सहित स्थावर जंगम प्रजा उत्पन्न और उस मनोराज से जगत् को उत्पन्न किया । उस जगत् के कोण में जो जम्बूद्वीप भरतखण्ड है उसमें मनुष्य को दुःख से आतुर देख उनके करुणा उपजी जैसे पुत्र को देखकर पिता के करुणा उपजती है । तब उनके निमित्त तप उत्पन्न किया कि वे सुखी हों और आज्ञा की कि तप करो । तब वे तप करने लगे और उस तप करने से स्वर्गादिक को प्राप्त होने लगे । पर उन सुखों को भोगकर वे फिर गिरे और दुःखी हुए ब्रह्माजी ने ऐसे देखकर सत्यवाक् रूप धर्म को प्रतिपादन किया और उनके सुख के निमित्त आज्ञा की । उस धर्म के प्रतिपादन से भी लोगों को सुख प्राप्त होने लगा और वहाँ भी कुछ काल सुख भोग कर फिर गिरे और दुखी के दुःखी रहे । फिर ब्रह्माजी ने दान तीर्थादिक पुण्य किया उत्पन्न करके उनको आज्ञा दी कि इनके सेवने से तुम सुखी रहोगे । जब वे जीव उनको सेवने लगे तब बड़े पुण्यलोक में प्राप्त होकर उनके सुख भोगने लगे और फिर कुछ काल अपने कर्म के अनुसार भोग भोगकर गिरे । जब उन्होंने तृष्णा की तो बहुत दुःखी भये और दुःखकर आतुर हुए । उस समय ब्रह्माजी ने देखा कि यह जीवन और मरण के दुःख से महादीन होते हैं इससे वह उपाय कीजिए जिससे उनका दुःख निवृत्त हो । हे रामचन्द्रजी! ब्रह्माजी ने विचारा कि इनका दुःख आत्मज्ञान बिना निवृत्त नहीं होगा इससे आत्मज्ञान को उत्पन्न कीजिये जिससे ये सुखी होवें । इस प्रकार विचार कर वे आत्मतत्त्व का ध्यान करने लगे । उस ध्यान के करने से शुद्ध तत्वज्ञान की मूर्ति होकर मैं प्रकट हुआ । मैं भी ब्रह्माजी के समान हूँ जैसे उनके हाथ में कमण्डलु है वैसे मेरे हाथ में भी है, जैसे उनके कण्ठ में रुद्राक्ष की माला है वैसे मेरे कण्ठ में भी है और जैसे उनके ऊपर मृगछाला है वैसे ही मेरे ऊपर भी है । मेरा शुद्ध ज्ञानस्वरूप है और मुझको जगत् कुछ नहीं भासता और भासता है तो स्वप्न की नाईं भासता है । तब ब्रह्माजी ने विचार किया कि इसको मैंने जीवों के कल्याण के निमित्त उत्पन्न किया है, पर यह तो

शुद्ध ज्ञानस्वरूप है और अज्ञानमार्ग का उपदेश तब हो जब कुछ प्रश्नोत्तर हो और तभी सत्य मिथ्या का विचार होवे । हे रामजी! तब जीवों के कल्याण के निमित्त ब्रह्माजी ने मुझको गोद में बैठाया और शीश पर हाथ फेरा । तब तो जैसे चन्द्रमा की किरण से शीतलता होती है वैसे ही मैं उससे शीतल हो गया । फिर ब्रह्माजी ने मुझको जैसे हंस को हंस कहे वैसे कहा, हे पुत्र! जीवों के कल्याण के निमित्त तुम एक मुहूर्त पर्यन्त अज्ञान को अंगीकार करो । जो श्रेष्ठ पुरुष हैं सो औरों के निमित्त भी अंगीकार करते आये हैं । जैसे चन्द्रमा बहुत निर्मल है परन्तु श्यामता को अंगीकार किये है वैसे ही तुम भी एक मुहूर्त अज्ञान को अंगीगार करो । हे रामजी! इस प्रकार मुझको कहकर ब्रह्माजी ने शाप दिया कि तू अज्ञानी होगा । तब मैंने ब्रह्माजी की आज्ञा मानी और शाप को अंगीकार किया और मेरा जो शुद्ध आत्मतत्त्व अपना आप था सो अन्य की नाईं हो गया । मेरी स्वभावसत्ता मुझको विस्मरण हो गई और मेरा मन जाग आया । तब भाव अभावरूप जगत् मुझको भासने लगा और अपने को मैं वशिष्ठ और ब्रह्माजी का पुत्र जानने लगा और नाना प्रकार के पदार्थ सहित जगत् जानकर उनकी ओर चञ्चल होने लगा । फिर मैंने संसारजल को दुःखरूप जानकर ब्रह्माजी से पूछा, हे भगवन्! यह संसार कैसे उत्पन्न हुआ? और कैसे लीन होता है? हे रामजी! जब मैंने इस प्रकार पिता ब्रह्माजी से प्रश्न किया तो उन्होंने भली प्रकार मुझको उपदेश किया उससे मेरा अज्ञान नष्ट हो गया । जैसे सूर्य के उदय होने से तम निवृत्त हो जाता है और जैसे आदर्श को मार्जन करने से शुद्ध हो जाता है वैसे ही मैं भी शुद्ध हुआ । हे रामजी! उस उपदेश से मैं ब्रह्माजी से भी अधिक हो गया । उस समय मुझको परमेष्ठी ब्रह्माजी ने आज्ञा की कि हे पुत्र! जम्बूद्वीप भरतखण्ड में तुमको अष्ट प्रजापति का अधिकार है वहाँ जाकर जीवों को उपदेश करो । जिसको संसार के सुख की इच्छा हो उसको कर्ममार्ग का उपदेश करना जिससे वे स्वर्गादिक सुख भोगें और जो संसार से विरक्त हो और आत्मपद की इच्छा रखता हो उसको ज्ञान उपदेश करना । हे रामजी! इस प्रकार मेरा उपदेश और उत्पत्ति हुई और इस प्रकार मेरा आना हुआ ।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे मुमुक्षुप्रकरणे वशिष्ठोपदेशगमनन्नाम दशमस्सर्ग ॥ १० ॥

अनुक्रम

वाशिष्ठोपदेश

इतना सुनकर श्रीरामजी बोले, हे भगवान्! उस ज्ञान की उत्पत्ति से अनन्त जीवों की शुद्धि कैसे हुई सो कृपाकर कहिये? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जो शुद्ध आत्मतत्त्व है उसका स्वभावरूप संवेदन–स्फूर्ति है; वह ब्रह्मारूप होकर स्थित हुई है । जैसे समुद्र अपनी द्रवता से तरंग रूप होता है वैसे ही ब्रह्माजी हुए हैं । उन्होंने सम्पूर्ण जगत् को उत्पन्न करके तीनों काल उत्पन्न किये । जब कुछ काल व्यतीत हुआ तो कलियुग आया उससे जीवों की बुद्धि मलीन हो गई और पाप में विचर कर शास्त्र वेद की आज्ञा उल्लंघन करने लगे । जब इस प्रकार धर्म मर्यादा छिप गई और पाप प्रकट हुआ तो जितनी कुछ राजधर्म की मर्यादा थी सो भी सब नष्ट हो गई और अपनी इच्छा के अनुसार जीव विचरकर कष्ट पाने लगे । उनको देखकर ब्रह्माजी के करुणा उपजी और दया करके मुझसे, सनत्कुमार से और नारद से बोले कि हे पुत्रों! तुम भूलोक में जाकर जीवों को शुद्ध उपदेश कर धर्म की मर्यादा स्थापन करो । जिस जीव को भोग की इच्छा हो उसको कर्मकाण्ड और जप, तप, स्नान, सन्ध्या, यज्ञादिक का उपदेश करना और जो संसार से विरक्त हुए हों और मुमुक्षु हों और जिन्हें परमपद पाने की इच्छा हो उनको ब्रह्मविद्या का उपदेश करना । यह आज्ञा देकर हमको भूमिलोक में भेजा । तब हम सब ऋषीश्वर इक ` होकर विचारने लगे कि जगत् की मर्यादा किस प्रकार हो और जीव शुभमार्ग में कैसे विचरें? तब हमने यह विचार किया कि प्रथम राज्य का स्थापन करो कि उसकी आज्ञानुसार जीव विचरें । निदान प्रथम दण्डकर्त्ता राज्य स्थापन किया । जिन राजों के बड़े वीर्यवान्, तेजवान और उदार आत्मा थे उनको भी हमने अध्यात्मविद्या का उपदेश किया जिससे वे परमपद को प्राप्त हुए और परमानन्दरूप अविनाशीपद ब्रह्मविद्या के उपदेश से उनको प्राप्त हुआ तब वे सुखी हुए । इस कारण ब्रह्मविद्या का नाम राजविद्या है । तब हमने वेद, शास्त्र, श्रुति और पुराणों से धर्म की मर्यादा स्थापन कर जप, तप, यज्ञ, दान, स्नान आदिक क्रिया प्रकट की और उपदेश किया कि जीव इसके सेवन से सुखी होगा । तब सब फल को पाकर उसको सेवने लगे, पर उनमें कोई बिरले निरहंकार हृदय की शुद्धता के निमित्त सेवन करते थे । हे रामजी! जो मूर्ख थे सो कामना के निमित्त मन में फूल के कर्म करते थे और घटीयन्त्र की नाईं भटककर कभी ऊर्ध्व और कभी नीच को जाते थे । जो निष्काम कर्म करते थे उनका हृदय शुद्ध होता था और ब्रह्मविद्या के अधिकारी होते थे । उस उपदेश द्वारा आत्मपद की प्राप्ति कर कितने तो जीवन्मुक्त हुए और कई राजा विदितवेद सिद्ध हुए सो राज्य की परम्परा चलाय हमारे उपदेश द्वारा ज्ञानी हुए । राजा दशरथ भी ज्ञानवान् हुए और तुम भी इसी दशा को प्राप्त हुए हो । जैसे तुम विरक्त हुए हो वैसे ही आगे भी स्वाभाविक विरक्त हुए है सो स्वभाव से ही तुम शुद्ध हो इसी कारण तुम श्रेष्ठ हो । जो कोई अनिष्ट दुःख प्राप्त होता है उससे विरक्तता उपजती है सो तुमको नहीं हुई, तुम्हें तो सब इन्द्रियों के विषय विद्यमान होने पर वैराग्य हुआ है, इससे तुम श्रेष्ठ हो । हे रामजी! मसान आदिक कष्ट के स्थानों को देखके तो सबको वैराग्य उपजती है कि कुछ नहीं, मर जाना है, पर उनमें जो कोई श्रेष्ठ पुरुष होता है सो वैराग्य को दृढ़ रखता है और मूर्ख है सो फिर विषय में आसक्त होता है इससे जिनको अकारण वैराग्य उपजता है सो श्रेष्ठ हैं । हे रामजी! जो श्रेष्ठ पुरुष हैं सो अपने वैराग्य और अभ्यास के बल से संसारबन्धन से मुक्त हो जाते हैं । जैसे हस्ती बन्धन को तोड़के अपने बल से निकल जाता है और सुखी होता है वैसे ही वैराग्य अभ्यास के बल से बन्धन से ज्ञानी मुक्त होते हैं । हे रामजी यह संसार बड़ा अनर्थरूप है । जिस पुरुष ने अपने पुरुषार्थ से इस बन्धन को नहीं तोड़ा उसको राग–द्वेषरूपी अग्नि जलाती है और जिस पुरुष ने अपने पुरुषार्थ से शास्त्र और गुरु के प्रमाण व युक्ति से ज्ञान को सिद्ध किया है वह उस पद को प्राप्त हुआ

है । जैसे वर्षाकाल में बहुत वर्षा के होने से वनको दावानल नहीं जला सकता वैसे ही ज्ञानी को आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक ताप कष्ट नहीं दे सकते । हे रामजी! जिन श्रेष्ठ पुरुषों ने संसार को विरस जानकर त्याग दिया है उनको संसार के पदार्थ गिरा नहीं सकते और जो मूर्ख हैं उनको गिरा देते हैं । जैसे तीक्ष्ण पवन के वेग से वृक्ष गिर जाते हैं । परन्तु कल्पवृक्ष नहीं गिरता वैसे ही हे रामजी! श्रेष्ठ पुरुष वही है जो संसार को विरस जानकर केवल आत्मतत्त्व की इच्छा करके परायण हो । उसी को ब्रह्मविद्या का अधिकार है और वही उत्तम पुरुष है । हे रामजी! तुम भी वैसे ही उज्ज्वल पात्र हो । जैसे कोमल पृथ्वी मे बीज बोते हैं वैसे ही तुमको मैं उपदेश करता हूँ । जिसको भोग की इच्छा है और संसार की ओर यत्न करता है सो पशुवत् है । श्रेष्ठ पुरुष वही है जिसको संसार तरने का पुरुषार्थ होता है । हे रामजी! प्रश्न उससे कीजिये जिससे जानिये कि यह प्रश्न के उत्तर देने में समर्थ है और जिसको उत्तर देने की सामर्थ्य न हो उससे कदाचित् प्रश्न न करना । उत्तर देने को समर्थ हो और उसके वचन में भावना न हो तब भी प्रश्न न करे, क्योंकि दम्भ से प्रश्न करने में पाप होता है । गुरु भी उन्ही को उपदेश करता है जो संसार से विरक्त हों और जिनको केवल आत्मपरायण होने की श्रद्धा और आस्तिकभाव हो । हे रामजी! जो गुरु और शिष्य दोनों उत्तम होते हैं तो वचन शोभते हैं । तुम उपदेश के शुद्धपात्र हो । जितने शिष्य के गुण शास्त्र में वर्णन किये हैं, सो सब तुममें पाये जाते हैं और मैं भी उपदेश करने में समर्थ हूँ, इससे कार्य शीघ्र होगा । हे रामजी! शुभ गुणों से तुम्हारी बुद्धि निर्मल हो रही है, इसलिये मेरा सिद्धान्त का सारवचन तुम्हारे हृदय में प्रवेश करेगा । जैसे उज्ज्वल वस्त्र में केसर का रंग शीघ्र चढ़ जाता है वैसे ही तुम्हारे निर्मल चित्त को उपदेश का रंग लगेगा । जैसे सूर्य के उदय से सूर्यमुखी कमल खिलता है वैसे ही तुम्हारी बुद्धि शुभ गुणों से खिल आई है । हे रामजी! जो कुछ शास्त्र का आत्मतत्त्व मैं तुमसे कहता हूँ उसमें तुम्हारी बुद्धि शीघ्र ही प्रवेश करेगी । हे रामजी! मैं तुम्हारे आगे हाथ जोड़ के प्रार्थना करता हूँ कि जो कुछ मैं तुमको उपदेश करता हूँ उसमे ऐसी आस्तिक भावना कीजियेगा कि इन वचनों से मेरा कल्याण होगा । जो तुमको धारण न हो तो प्रश्न मत करना । जिस शिष्य को गुरु वचन में आस्तिक भावना होती है उसका शीघ्र ही कल्याण होता है । अब जिससे तुमको आत्मपद प्राप्त हो सो मैं कहता हूँ । प्रथम जो अज्ञानी जीव में असत्य बुद्धि है उसका संग त्याग करो और मोक्षद्वार के चारों द्वारपालों से मित्र भावना करो । जब उनसे मित्र भाव होगा तब वह मोक्षद्वार में पहुँचा देंगे और तभी तुमको आत्मदर्शन होवेगा । उन द्वारपालों के नाम सुनो शम, सन्तोष, विचार और सत्संग यह चारों द्वारपाल हैं । जिस पुरुष ने इनको वश में किया है उसको यह शीघ्र ही मोक्षरूपी द्वार के अन्दर कर देते हैं । हे रामजी! जो चारों वश में न हों तो तीन को ही वश में करो, अथवा दो ही को वश कर लो अथवा एक वश करो । जो एक भी वश में होगा तो चारों ही वश में हो जायँगे । इन चारों का परस्पर स्नेह है । जहाँ एक आता है वहाँ चारों आते हैं । जिन पुरुषों ने इससे स्नेह किया है सो सुखी हुए हैं और जिसने इनका त्याग किया है सो दुःखी हैं । हे रामजी! यदि प्राण का त्याग हो तो भी एक साधन को तो बल से वश करना चाहिये । एक के वश करने से चारों ही वशीभूत होंगे । तुम्हारी बुद्धि में शुभ गुणों ने आके निवास किया है । जैसे सूर्य में सब प्रकाश आ जाते हैं वैसे ही सन्तों और शास्त्रों ने जो निर्मल गुण कहे हैं सो सब तुम में पाये जाते हैं । हे रामजी! तुम मेरे वचनों के वैसे अधिकारी हुए जैसे तन्द्री के सुनने को अंदोरा (स्पष्ट सुनने वाला) अधिकारी होता है । चन्द्रमा के उदय से जैसे चंद्रवंशी कमल खिल आते हैं वैसे ही शुभ गुणों से तुम्हारी बुद्धि खिल आई है । हे रामजी! सत्संग और सत्शास्त्रों द्वारा बुद्धि को तीक्ष्ण करने से शीघ्र ही आत्मतत्व में प्रवेश होता है । इससे श्रेष्ठ पुरुष वही है जिसने संसार को विरस जान के त्याग दिया है और सन्तों और सत्शास्त्रों

के वचनों द्वारा आत्मपद पाने का यत्न करता है । वह अविनाशी पद को प्राप्त होता है । जो शुभ मार्ग त्याग करके संसार की ओर लगा है वह महामूर्ख जड़ है जैसे शीतलता से जल बर्फ हो जाता है वैसे ही अज्ञानी मूर्खता से दृढ़ आत्म मार्ग से जड़ हो जाता है । हे रामजी! अज्ञानी के हृदयरूपी बिल में दुराशारूपी सर्प रहता है, इससे वह कदाचित् शान्ति नहीं पाता और कभी आनन्द से प्रफुल्लित नहीं होता । वह वैसे ही आशा से सदा संकुचित रहता है जैसे अग्नि में माँस सकुच जाता है । हे रामजी! आत्मपद के साक्षात्कार में विशेष आवरण आशा ही है । जैसे सूर्य के आगे मेघ का आवरण होता है वैसे ही आत्मतत्व के आगे दुराशा आवरण है । जब आशारूपी आवरण दूर हो तब आत्मपद का साक्षात्कार होवे हे रामजी! आशा तब दूर हो जब सन्तों की संगति और सत्शास्त्रों का विचार हो । हे रामजी! संसाररूपी एक बड़ा वृक्ष है सो बोध रूपी खंग से छेदा जा सकता है । जब सत्संग और सत्शास्त्र से बुद्धिरूपी खंग तीक्ष्ण हो तब संसाररूपी भ्रम का वृक्ष नष्ट हो जाता है । जब शुभगुण होते हैं तब आत्मज्ञान आके विराजता है । जहाँ कमल होते हैं वहाँ भौंरे भी आके स्थित होते हैं । शुभ गुणों में आत्मज्ञान रहता है । हे रामजी! शुभगुणरूप पवन से जब इच्छारूपी मेघ निवृत्त होता है तब आत्मरूपी चन्द्रमा का साक्षात्कार होता है । जैसे चन्द्रमा के उदय होने से आकाश शोभा देता है वैसे ही आत्मा के साक्षात्कार होने से तुम्हारी बुद्धि खिलेगी ।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे मुमुक्षप्रकरणे वाशिष्ठोपदेशो नामैकादशस्सर्गः ॥११॥

अनुक्रम

तत्त्वमाहात्म्यंनाम

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! तुम मेरे वचनों के अधिकारी हो, मूर्ख मेरे वचनों के अधिकारी नहीं, क्योंकि जप, तप, वैराग्य, विचार, सन्तोष आदि जिज्ञासु के शुभ गुण जो शास्त्रों और सन्तजनों ने कहे हैं उनसे तुम सम्पन्न हो और जितने गुरु के गुण शास्त्र में वर्णन किये हैं सो सब मुझमें हैं । जैसे रत्न से समुद्र सम्पन्न है वैसे ही गुणों से मैं सम्पन्न हूँ । इससे तुम मेरे वचनों को रजो और तमो आदि गुणों को त्याग कर शुद्ध सात्त्विकवान् होकर सुनो । हे रामजी! जैसे चन्द्रमा के उदय होने से चन्द्रकान्तमणि द्रवीभूत होती है और उसमें से अमृत निकलता है पर पत्थर की शिला मेंसे नहीं निकलता वैसे ही जो जिज्ञासु होता है उसी को परमार्थ का वचन लगता है, अज्ञानी को नहीं लगता । जैसे निर्मल चन्द्रमुखी कमलिनी हो पर चन्द्रमा न हो तो वह प्रफुल्लित नहीं होती वैसे ही जो शिष्य शुद्ध पात्र हो और उपदेश करनेवाला ज्ञानवान् न हो तो उसकी आत्मा का साक्षात्कार नहीं होता । इसलिये तुम मोक्ष के पात्र हो और मैं भी परम गुरु हूँ । मेरे उपदेश से तुम्हारा अज्ञान नष्ट हो जावेगा । अब मैं मोक्ष का उपाय कहता हूँ; यदि तुम उसको भले प्रकार विचारोगे तो जैसे महाप्रलय के सूर्य से मन्दराचल पर्वत जल जाता है वैसे ही तुम्हारे मलीन मन की वृत्ति का अभाव हो जावेगा । इससे हे रामजी वैराग्य और अभ्यास के बल से इस को अपने में लीन कर शान्तात्मा हो । तुमने बाल्यावस्था से अभ्यास कर रखा है इससे मन को उपशम करके आत्मपद को प्राप्त होगे । हे रामजी! जिन्होंने सत्संग और सत्शास्त्रों द्वारा आत्मपद पाया है सो सुखी हुए हैं, फिर उनको दुःख नहीं लगा, क्योंकि दुःख देहाभिमान से होता है सो देह का अभिमान तो तुमने त्याग ही दिया है । जिसने देह का अभिमान त्याग दिया है और देह को आत्मा से फिर ग्रहण नहीं करता सो सुखी रहता है । हे रामजी! जिसने आत्मिक बल (विचार) द्वारा आत्मपद प्राप्त किया है वह अकृत्रिम आनन्द से सदा पूर्ण है और सब जगत् उसको आनन्द रूप भासता है । जो असम्यक्दर्शी हैं उनको जगत् अनर्थरूप भासता है । हे रामजी! यह संसाररूप सर्प अज्ञानियों के हृदय में दृढ़ हो गया है वह योगरूपी गारूड़ी मन्त्र करके नष्ट हो जाता है, अन्यथा नहीं नष्ट होता । सर्प के विष से एक जन्म में मरता है और संसरणरूपी विष से अनेक जन्म पाकर मरता चला जाता है– कदाचित् शान्तिमान् नहीं होता । हे रामजी! जिस पुरुष ने सत्संग और सत्शास्त्र के वचन द्वारा आत्मपद को पाया है वह आनन्दित हुआ है उसको भीतर बाहर सब जगत् आनन्दरूप भासता है और सब क्रिया करने में उसे आनन्द विलास है । जिसने सत्संग और सत्शास्त्रों का विचार त्यागा है और संसार के सम्मुख है उसको अनर्थरूप संसार दुःख देता है । कोई सर्प के दंश से दुःखी होते हैं कोई शस्त्र से घायल होते हैं, कितने अग्नि में पड़े की नाई जलते हैं, कितने रस्सी के साथ बँधे होते हैं और कितने अन्धकूप में गिर के कष्ट पाते हैं । हे रामजी! जिन पुरुषों ने सत्संग और सत्शास्त्रों द्वारा आत्मपद को नहीं पाया उनको नरकरूप अग्नि में जलना, चक्की में पीसा जाना, पाषाण की वर्षा से चूर्ण होना, कोल्हू में पेरा जाना और शस्त्र से काटा जाना इत्यादि जो बड़े बड़े कष्ट हैं प्राप्त होते हैं । हे रामजी! ऐसा दुःख कोई नहीं जो इस जीव को प्राप्त नहीं होता; आत्मा के प्रमाद से सब दुःख होते हैं जिन पदार्थों को यह रमणीय जानता है सो चक्र की नाईं चञ्चल हैं, कभी स्थिर नहीं रहते । सत्मार्ग को त्यागकर जो इनकी इच्छा करते हैं सो महादुःख को प्राप्त होते हैं और उनका दुःख इसलिए नष्ट नहीं होता कि वह ज्ञान के निमित्त पुरुषार्थ नहीं करते । जो पुरुष संसार को निरस जानकर पुरुषार्थ की ओर दृढ़ हुआ है उसको आत्मपद की प्राप्ति होती है । हे रामजी! जिस पुरुष को आत्मपद की प्राप्ति हुई है उसको फिर दुःख नहीं होता । अज्ञानी को संसार दुःखरूप है और ज्ञानी को सब जगत् आनन्दरूप

है– उसकी कुछ भ्रम नहीं रहता । हे रामजी! ज्ञानवान् में नाना प्रकार की चेष्टा भी दृष्टि आती हैं तो भी वह सदा शान्त और आनन्दरूप है । संसार का दुःख उसको स्पर्श नहीं कर सकता , क्योंकि उसने ज्ञानरूपी कवच पहिना है । हे रामजी! ज्ञानवान् को भी दुःख होता है बड़े बड़े ब्रह्मर्षि और राजर्षि बहुत ज्ञानवान् हुए हैं । वे भी दुःख को प्राप्त होते रहे हैं परन्तु वे दुःख से आतुर नहीं होते थे वे सदा आनन्दरूप हैं । जैसै ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र आदि नाना प्रकार की चेष्टा करते जीवों को दृष्टि आते हैं पर अन्तर से वे सदा शान्तरूप हैं, उनको कर्ता का कुछ अभिमान नहीं । हे रामजी! अज्ञानरूपी मेघ से उत्पन्न मोहरूपी कुहड़ों का वृक्ष ज्ञानरूपी शरत्काल से नष्ट हो जाता है । इससे स्वसत्ता को प्राप्त होता है और सदा आनन्द से पूर्ण रहता है । वह जो कुछ क्रिया करता है सो उसका विलासरूप है, सब जगत् आनन्दरूप है । शरीररूपी रथ और इन्द्रियरूपी अश्व हैं । मनरूपी रस्से से उन अश्वों को खींचते हैं । बुद्धिरूपी रथ भी वही है जिस रथ में वह पुरुष बैठा है और इन्द्रियरूपी अश्व उसको खोटे मार्ग में डालते हैं । ज्ञानवान् के इन्द्रियरूपी अश्व ऐसे हैं कि जहाँ जाते हैं वहाँ आनन्दरूप हैं, किसी ठौर में खेद नहीं पाते, सब क्रिया में उनको विलास है और सर्वदा आनन्द से तृप्त रहते हैं ।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे मुमुक्षुप्रकरणे तत्त्वमाहात्म्यंनाम द्वादशस्सर्गः ॥१२॥

अनुक्रम

शमनिरूपण

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! इसी का आश्रय करो कि तुम्हारा हृदय पुष्ट हो, फिर संसार के इष्ट अनिष्ट से चलायमान न होगा । जिस पुरुष को इस प्रकार आत्मपद की प्राप्ति हुई है सो आनन्दित हुआ है । वह न शोक करता है, न याचना करता है और हेयोपादेय से भी रहित परम शान्तिरूप, अमृत से पूर्ण हो रहा है । वह पुरुष नाना प्रकार की चेष्टा करता दृष्टि आता है, परन्तु वास्तव में कुछ नहीं करता जहाँउसके मन की वृत्ति जाती है वहाँ आत्मसत्ता भासती है जैसे पूर्णमासी का चन्द्रमा अमृत से पूर्ण रहता है वैसे ही ज्ञानवान् परमानन्द से पूर्ण रहता है । हे रामजी यह जो मैंने तुमसे अमृतरूपी वृत्त कही है इसको तब जानोगे जब तुमको ब्रह्म का साक्षात्कार होगा । जैसे चन्द्रमा के मण्डल में ताप नहीं होता वैसे ही आत्मज्ञान् की प्राप्ति होने से सब दुःख नष्ट हो जाते हैं । अज्ञानी को कभी शान्ति नहीं होती; वह जो कुछ क्रिया करता है उसमें दुःख पाता है । जैसे कीकर के वृक्ष में कण्टकों की ही उत्पत्ति होती है वैसे ही अज्ञानी को दुःखों की ही उत्पत्ति होती है । हे राम जी! इस जीव को मूर्खता और अज्ञानता से बड़े दुःख प्राप्त होते हैं जिनके समान और दुःख नहीं । यदि आत्मतत्त्व की जिज्ञासा में हाथ में ठीकरा ले चाण्डाल के घर से भिक्षा ग्रहण करे वह भी श्रेष्ठ है, पर मूर्खता से जीना व्यर्थ है । उस मूर्खता के दूर करने को मैं मोक्ष उपाय कहता हूँ । यह मोक्ष उपाय परमबोध का कारण है । इसके लिये कुछ संस्कृत बुद्धि भी होनी चाहिए जिससे पद पदार्थ का बोध हो और मोक्ष उपाय शास्त्र को विचारे तो उसकी मूर्खता नष्ट होकर आत्मपद की प्राप्ति होगी । नाना प्रकार के दृष्टान्तों सहित जैसे आत्मबोध का कारण यह शास्त्र है वैसा कोई शास्त्र त्रिलोकी में नहीं । इसे जब विचारोगे तब परमान्द को पावोगे । यह शास्त्र अज्ञान तिमिर के नाश करने को ज्ञानरूपी शलाका है । जैसे अन्धकार को सूर्य नष्ट करता है वैसे ही अज्ञान को इस शास्त्र का विचार नष्ट करता है । हे रामजी! जिस प्रकार इस जीव को कल्याण है सो जानिये । जब ज्ञानवान् गुरु सत्शास्त्रों का उपदेश करे और शिष्य अपने अनुभव से ज्ञान पावे अर्थात् गुरु अपना अनुभव और शास्त्र जब ये तीनों इक` मिलें तब कल्याण होता है । जब तक अकृत्रिम आनन्द न मिले तब तक अभ्यास करे । उस अकृत्रिम आनन्द को प्राप्त करानेवाला मैं गुरु हूँ । जीवमात्र का मैं परम मित्र हूँ । हमारी संगति जीव को आनन्द प्राप्त करानेवाली है । इसलिए जो कुछ मैं चाहता हूँ सो तुम करो । संसार के क्षणमात्र के भोगों को त्याग करो । क्योंकि विषय के परिणाम में अनन्त दुःख हैं और हमसे ज्ञानवानों का संग करो । हमारे वचनों के विचार से तुम्हारे सब दुःख नष्ट हो जावेंगे । जिस पुरुष ने हमारे साथ प्रीति की है उसको हमने आनन्द की प्राप्ति, जिससे ब्रह्मादिक आनन्दित हुए हैं, करा दी है । ज्ञानवान् आनन्दित हुए और निर्दुःख पद को प्राप्त हुए हैं । हे रामजी! आत्मा का प्रमाद जीव को दीन करता है । जिसने सन्तों और शास्त्रों के विचार द्वारा दृश्यको अदृश्य जाना है वह निर्भय हुआ है । अज्ञानी का हृदयकमल तब तक सकुचा रहता है जब तक तृष्णारूपी रात्रि नष्ट हो जाती और हृदयकमल आनन्द से नहीं खिल आता । हे रामजी! जिस पुरुष ने परमार्थ मार्ग को त्याग दिया है और संसार के खान पान आदि भोगों में मग्न हुआ है उसको तुम मेंढक जानों, जो कीच में पड़ा शब्द करता है । हे रामजी! यह संसार बड़ा आपदा का समुद्र है । इसमें जो कोई श्रेष्ठ पुरुष है वह सत्संग और सत्शास्त्र के विचार से इस समुद्र को उलंघ जाता है और परमानन्द निर्भयपद को जो आदि अन्त और मध्य से रहित है प्राप्त होता है और जो संसारसमुद्र के सम्मुख हुआ है वह दुःख से दुःख को प्राप्त होता है और कष्ट से कष्टतर नरक को प्राप्त होता है । जैसे विष को विष जान उसका पान करता है और वह विष उसको नाश करता है वैसे ही जो पुरुष संसार को असत्य जानकर फिर संसार की ओर यत्न

करता है सो मृत्यु को प्राप्त होता है । हे रामजी! जो पुरुष आत्मपद से विमुख है पर उसे कल्याण रूप जानता है और उसके अभ्यास का त्यागकर संसार की धावता है वह वैसे ही नष्ट होगा और जन्म मरण को पावेगा जैसे किसी के घर में अग्नि लगे और वह तृण के घर और तृण ही की शय्या में शयन करे तो वह नष्ट होगा । जो संसार के पदार्थों में सुख मानते हैं वे सुख बिजली की चमक से हैं जो होके मिट जाते हैं––स्थिर नहीं रहते । संसार का दुःख आगमापायी है । हे रामजी! यह संसार अविचार से भासता है और विचार करने से लीन हो जाता है । यदि विचार करने से लीन न होता तो तुमको उपदेश करने का काम नहीं था । इसी कारण पुरुषार्थ चाहिए–जैसे हाथ में दीपक हो और अन्धा होकर कूप में गिरे सो मूर्खता है वैसे ही संसार भ्रम के निवारणवाले गुरु और शास्त्र विद्यमान् हैं जो उनकी शरण न आवे वह मूर्ख हैं । हे रामजी! जिस पुरुष ने सन्त की संगति और सत्‌शास्त्र के विचार द्वारा आत्मपद को पाया है सो पुरुष केवल कैवल्यभाव को प्राप्त हुआ है अर्थात् शुद्ध चैतन्य को प्राप्त हुआ है और संसार भ्रम उसका निवृत्त हो गया है । हे रामजी! यह संसार मन के संसरने से उपजा है । जीव का कल्याण बान्धव, धन, प्रजा, तीर्थ देव द्वारा और ऐश्वर्य से नहीं होता, केवल एक मन के जीतने से कल्याण होता है । हे रामजी! जिसको ज्ञान परमपद रसायन कहते हैं; जिसके पाने से जीव का नाश न हो और जिसमें सर्वमुख की पूर्णता हो इसका साधन समता और संतोष है । इनसे ज्ञान उत्पन्न होता है । आत्मज्ञानरूपी एक वृक्ष है सो उसका फूल शान्ति है और स्थिति फल है जिस पुरुष को यह ज्ञान प्राप्त हुआ है शान्तिमान् होकर निर्लेप रहता है । उसको संसार का भावाभावरूप स्पर्श नहीं होता जैसे आकाश में सूर्य उदय होने से जगत की क्रिया होती है और जब वह अदृश्य होता है तब जगत् की क्रिया भी लीन हो जाती है; और जैसे उस क्रिया के होने और न होने में आकाश ज्यों का त्यों है वैसे ही ज्ञानवान् सदा निर्लेप है उस आत्मज्ञान् की उत्पत्ति का उपाय यह मेरा श्रेष्ठ शास्त्र है । हे रामजी! जो पुरुष इस मोक्षोपाय शास्त्र को श्रद्धासंयुक्त पढ़े अथवा सुने तो उसी दिन से वह मोक्ष का भागी हो । मोक्ष के चार द्वारपाल हैं सो मैं तुमसे कहता हूँ । जब इनमें से एक भी अपने वश हो तब मोक्षद्वार में शीघ्र ही प्रवेश होगा । उन चारों के नाम सुनिये । हे रामजी! शम जीव के परम विश्राम का कारण है । यह संसार जो दीखता है सो मरुस्थल की नदीवत् है इसको देखकर मूर्ख अज्ञानी सुखरूप जल जानकर मृग के समान दौड़ता है । शान्ति को नहीं प्राप्त होता । जब शमरूपी मेघ की वर्षा हो तब सुखी हो । हे रामजी! शम ही परमानन्द परमपद और शिवपद है । जिस पुरुष ने शम पाया है सो संसारसमुद्र से पार हुआ है । उसके शत्रु भी मित्र हो जाते हैं । हे राम जी! जैसे चन्द्र उदय होता है तब अमृत की कणा फूटती है और शीतलता होती है वैसे ही जिसके हृदय में शमरूपी चन्द्रमा उदय होता है उसके सब ताप मिट जाते हैं और परम शान्तिमान् होता है । हे रामजी! शम देवता के अमृत समान कोई अमृत नहीं, शम से परम शोभा की प्राप्ति होती है । जैसे पूर्णमासी के चन्द्रमा की कान्ति परम उज्ज्वल होती है वैसे ही शम को पाके जीव की उज्ज्वल कान्ति होती है । जैसे विष्णु के दो हृदय हैं–एक तो अपने शरीर में और दूसरा सन्तों में है वैसे ही जीव के भी दो हृदय होते हैं एक अपने शरीर में और दूसरा शम में । जैसा आनन्द शमवान्को होता है वैसा अमृत पीने से भी नहीं होता । हे रामजी! कोई प्राण से प्रिय अन्तर्धान होकर फिर प्राप्त हो तो जैसा आनन्द होता है उस आनन्द से भी अधिक आनन्द शमवान् को होता है । उसके दर्शनसे जैसा आनन्द होता है ऐसा आनन्द राजा, मंत्री और सुन्दर स्त्री को भी नहीं । हे रामजी! जिस पुरुष को शम की प्राप्ति हुई है वह वन्दना करने और पूजने योग्य है । जिसको शम की प्राप्ति हुई है उसको उद्वेग नहीं होता और अन्य लोगों से उद्वेग नहीं पाता । उसकी क्रिया और वचन अमृत की नाईं मीठे और चन्द्रमा की किरण के समान शीतल और सबको हृदयाराम हैं । हे रामजी! जैसे बालक माता को पाके

आनन्दित होता है वैसे ही जिसको शम की प्राप्ति हुई है उसके संग से जीव अधिक आनन्दवान् होता है । जैसे किसी का बान्धव मुवा हुआ फिर आवे और उसको आनन्द प्राप्त हो उससे भी अधिक आनन्द शमसम्पन्न पुरुष को होता है । हे रामजी! ऐसा आनन्द चक्रवर्ती और त्रिलोकी का राज्य पाने से भी नहीं होता ।जिसको शम की प्राप्ति हुई है उसके शत्रु भी मित्र हो जाते हैं; उसको सर्प और सिंह का भय नहीं रहता बल्कि किसी का भी भय नहीं रहता, वह सदा निर्भय शान्तरूप रहता है । हे रामजी! जो कोई कष्ट प्राप्त हो और काल की अग्नि भी आ लगे तो भी वह चलायमान नहीं होता–सदा शान्तरूप रहता है । जैसे शीतल चाँदनी चन्द्रमा में स्थिर है वैसे ही जो कुछ शुभ गुण और संपदा है सब शमवान् के हृदय में आ स्थित होती है । हे रामजी! जो पुरुष आध्यात्मिकादि ताप से जलता है उसके हृदय में कदाचित् शम की प्राप्ति हो तो सब ताप मिट जाते हैं । जैसे तप्त पृथ्वी वर्षा से शीतल हो जाती है वैसे ही उसका हृदय शीतल हो जाता है । जिसको शम की प्राप्ति हुई है सो सब क्रिया में आनन्दरूप है उसको कोई दुःख नहीं स्पर्श करता । जैसे बज्र और शिला को बाण नहीं वेध सकता वैसे ही जिस पुरुष ने शमरूपी कवच पहिना है उसको आध्यात्मिकादि ताप बेध नहीं सकते–वह सर्वदा शीतलरूप रहता है । हे रामजी! तपस्वी, पण्डित, याज्ञिक और धनाढ्य पूजा में मान करने योग्य हैं, परन्तु जिसको शम की प्राप्ति हुई है सो सबसे उत्तम और सबके पूजने योग्य है । उसके मन की वृत्ति आत्मतत्त्व को ग्रहण करती है और सब क्रिया में सोहती है । जिस पुरुष को शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध क्रिया के विषयों के इष्ट अनिष्ट में राग द्वेष नहीं होता उसको शान्तात्मा कहते हैं । हे रामजी! जो संसार के रमणीय पदार्थ में बध्यमान नहीं होता और आत्मानन्द से पूर्ण है उसको शान्ति शुभ अशुभ का मलिनपना नहीं लगता वह तो सदा निर्लेप रहता है जैसे आकाश सब पदार्थों से निर्लेप है वैसे ही शान्तिमान सदा निर्लेप रहता है । हे रामजी! ऐसा पुरुष इष्ट विषय की प्राप्ति में हर्षवान् नहीं होता और अनिष्ट की प्राप्ति में शोकवान नहीं होता । वह अन्तःकरण से सदा शान्त रहता है और उसको कोई दुःख स्पर्श नहीं करता; वह अपने आपमें सदा परमानन्दरूप रहता है । जैसे सूर्य के उदय होते ही अन्धकार नष्ट हो जाता है वैसे ही शान्ति के पाने से सब दुःख नष्ट होकर सदा निर्विकार रहता है । हे रामजी! वह पुरुष सब चेष्टा करते दृष्टि आता है परन्तु सदा निर्गुणरुप है, कोई क्रिया उसको स्पर्श नहीं करती । जैसे जल में कमल निर्लेप रहता है वैसे ही शान्ति मान् सदा निर्लेप रहता है । हे रामजी! जो पुरुष बड़ी राज्य–सम्पदा और बड़ी आपदा को पाकर ज्यों का त्यों अलग रहता है उसे शान्तिमान् कहिये । हे रामजी! जो पुरुष शान्ति से रहित है उसका चित्त क्षण–क्षण राग–द्वेष से तपता है और जिसको शान्ति की प्राप्ति हुई है सो भीतर बाहर शीतल और सदा एक रस है । जैसे हिमालय सदा शीतल रहता है वैसे ही वह सदा शीतल रहता है । उसके मुख की कान्ति बहुत सुन्दर हो जाती है । जैसे निष्कलंक चन्द्रमा है वैसे ही शान्तिमान् निष्कलंक रहता है । हे रामजी! जिसको शान्ति प्राप्त हुई है सो परम आनन्दित हुआ है और उसी को परम लाभ प्राप्त होता है ज्ञानी इसी को परम पद कहते हैं । जिसको पुरुषार्थ करना है उसको शान्ति की प्राप्ति करनी चाहिए । हे रामजी! जैसे मैंने कहा है उस क्रम से शान्ति का ग्रहण करो तब संसार के पार पहुँचोगे।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे मुमुक्षुप्रकरणे शमनिरूपणन्नाम त्रयोदशस्सर्गः ॥१३॥

अनुक्रम

विचारनिरूपण

वशिष्ठजी बोले हे रामजी! अब विचार का निरूपण सुनिये । जब हृदय शुद्ध होता है तब विचार होता है और शास्त्रार्थ के विचार द्वारा बुद्धि तीक्ष्ण होती है । हे रामजी! अज्ञानवन में आपदारूपी बेलि की उत्पत्ति होती है उसको विचाररूपी खंग से जब काटोगे तब शान्त आत्मा होगे । मोहरूपी हस्ती जीव के हृदयकमल का खण्ड–खण्ड कर डालता है – अभिप्राय यह है कि इष्ट अनिष्ट पदार्थ में राग द्वेष से छेदा जाता है । जब विचार रूपी सिंह प्रकटे तब मोहरूपी हस्ती का नाश कर शान्तात्मा होगे । हे रामजी! जिसको कुछ सिद्धता प्राप्त हुई है उसे विचार और पुरुषार्थ से ही हुई है । जब प्रथम राजा विचारकर पुरुषार्थ करता है तब उसी से राज्य को प्राप्त होता है । प्रथम बल, दूसरे बुद्धि, तीसरे तेज चतुर्थ पदार्थ आगमन और पञ्चम पदार्थ की प्राप्ति इन पाँचों की प्राप्ति विचार से होती है अर्थात् इन्द्रियों का जीतना, बुद्धि आत्मव्यापिनी और तेज, पदार्थ का आगमन इनकी प्राप्ति विचार से होती है । हे रामजी! जिस पुरुष ने विचार का आश्रय लिया है वह विचार की दृढ़ता से जिसकी वाच्छा करता है उसको पाता है । इससे विचार इसका परम मित्र है । विचारवान् पुरुष आपदा में नहीं फँसता । जैसे तुम्बी जल में नहीं डूबती वैसे ही वह आपदा में नहीं डूबता । हे रामजी! वह जो कुछ करता है विचार संयुक्त करता है और विचार संयुक्त ही देता लेता है । उसकी सब क्रिया सिद्धता का कारण होती है । और धर्म, अर्थ, काम मोक्ष विचार की दृढ़ता से ही सिद्ध होते हैं । विचार रूपी कल्प वृक्ष में जिसका अभ्यास होता है सोई पदार्थों की सिद्धि को पाता है । हे रामजी! शुद्ध ब्रह्म का विचार ग्रहण करके आत्मज्ञान को प्राप्त हो जाओ । जैसे दीपक से पदार्थ का ज्ञान होता है वैसे ही पुरुष विचार से सत्य असत्य को जानता है । जो असत्य को त्यागकर सत्य की ओर यत्न करता है उसी को विचारवान् कहते है । हे रामजी! संसार रूपी समुद्र में आपदा की तरंगे उठती हैं । विचारवान् पुरुष उनके भाव अभाव में कष्ट वान् नहीं होता । जो कुछ क्रिया विचार संयुक्त होती है उसका परिणाम सुख है और जो विचार बिना चेष्टा होती है उससे दुःख प्राप्त होता है । हे रामजी! अविचाररूप कण्टक के वृक्ष से दुःख के बड़े कण्टक उत्पन्न होते हैं । अविचाररूपी रात्रि में तृष्णा रूपी पिशाचिनी विचरती है और विचाररूपी सूर्य उदय होता है तब अविचाररूपी रात्रि और तृष्णारूपी पिशाचिनी नष्ट हो जाती है । हे रामजी! हमारा यही आशीर्वाद है कि तुम्हारे हृदय से अविचाररूपी रात्रि नष्ट हो जाय । विचाररूपी सूर्य से अविचारित संसार दुःख का नाश होता है । जैसे बालक अविचार से अपनी परछाहीं को वैताल कल्प के भय पाता है और विचार करने से भय नष्ट होता जाता है वैसे ही अविचार से संसार दुःख देता है और सत्शास्त्र द्वारा युक्तिकर विचार करने से संसार का भय नष्ट हो जाता है । हे रामजी! जहाँ विचार है वहाँ दुःख नहीं है । जैसे जहाँ प्रकाश है वहाँ अन्धकार नहीं होता और जहाँ प्रकाश नहीं वहाँ अन्धकार रहता है वैसे ही विचार है वहाँ संसारभय नहीं है और जहाँ विचार नहीं वहाँ संसारभय रहता है । जहाँ आत्म विचार उत्पन्न होता हैं वहाँ सुख देनेवाले शुभगुण स्थित होते हैं । जैसे मणिसरोवर में कमल की उत्पत्ति होती है वैसे विचार में शुभ गुणों की उत्पत्ति होती है । जहाँ विचार नहीं है वहाँ ही दुःख का आगमन होता है । हे रामजी! जो कुछ अविचार से क्रिया करते हैं सो दुःख का कारण होती है । जैसे चूहा बिल को खोद के मृत्तिका निकालता है वह जहाँ इक ी होती है वहाँ बेलि की उत्पत्ति होती है वैसे ही अविचार से जो मृत्तिकारूपी पाप क्रिया को इक ी करता है और उससे आपदारूपी बेलि उत्पन्न होती है । अविचार उसका नाम है जिसमें शुभ और शास्त्रानुसार क्रिया न हो । हे रामजी! विवेक रूपी उसकी ध्वजा है जहाँ विवेकरूपी राजा आता है वहाँ विचाररूपीध्वजा भी उसके साथ फिरती है और जहाँविचार रूपी ध्वजा आती है वहाँ विवेकरूपी राजा भी आता है ।

जो पुरुष विचार से सम्पन्न है सो पूजने योग्य है । जैसे द्वितीया के चन्द्रमा को सब नमस्कार करते हैं वैसे ही विचारवान् को सब नमस्कार करते हैं । हे रामजी! हमारे देखते देखते अल्पबुद्धि भी विचार की दृढ़ता से मोक्षपद को प्राप्त हुए हैं ।इससे विचार सबका परम मित्र है ।जैसे हिमालय पर्वत भीतर बाहर से शीतल रहता है वैसे ही वह भी शीतल रहता है । देखो, विचार से जीव ऐसे पद को प्राप्त होता है जो नित्य, स्वच्छ, अनन्त और परमानन्दरूप है । उसको पाकर फिर उसके त्याग की इच्छा नहीं होती और न और ग्रहण की ही इच्छा होती है । उसको इष्ट अनिष्ट सब समान हैं । जैसे तरंग के होने और लीन होने में समुद्र समान रहता है वैसे ही विवेकी पुरुष को इष्ट अनिष्ट में समता रहती है और संसारभ्रम मिट जाता है । आधाराधेय से रहित केवल अद्वैत तत्त्व उसको प्राप्त होता है । हे रामजी! यह जगत अपने मन के मोह से उपजता है और अविचार से दुःख दायी दीखता है । जैसे अविचार से बालक को वैताल भासता है वैसे ही इसको जगत् भासता है । जब ब्रह्मविचार की प्राप्ति हो तब जगत् का भ्रम नष्ट हो जावे । हे रामजी! जिसके हृदय में विचार होता है उसको समता की उत्पत्ति होती है जैसे बीज से अंकुर निकल आता है वैसे ही विचार से समता हो आती है और विचारवान् पुरुष जिसकी ओर देखता है उस ओर आनन्द दृष्टि आता है, दुःख नहीं भासता । जैसे सूर्य को अन्धकार नहीं दृष्टि आता वैसे ही विचारवान् को दुःख नहीं दृष्टि आता । जहाँ अविचार है वहाँ दुःख है, जहाँ विचार है वहाँ सुख है । जैसे अन्धकार के अभाव से वैताल के भय का अभाव हो जाता है वैसे ही विचार से दुःख का अभाव हो जाता है । हे रामजी! संसाररूपी दीर्घरोग के नष्ट करने को विचार बड़ी औषधि है जैसी पौर्णमासी के चन्द्रमा की उज्ज्वल कान्ति होती है वैसे ही विचारवान् के मुख की उज्ज्वल कान्ति होती है । हे रामजी! विचार से ही परम पद की प्राप्ति होती है । जिससे अर्थ सिद्ध हो उसका नाम विचार है और जिससे अनर्थ सिद्ध हो उसका नाम अविचार है । जो अविचाररूपी मदिरा पान करता है वह उन्मत्त हो जाता है । उससे शुभ विचार कोई नहीं होता और शास्त्र के अनुसार क्रिया भी उससे नहीं होती । हे रामजी! इच्छारूपी रोग विचाररूपी औषधि से निवृत्त होता है । जिस पुरुष ने विचार द्वारा परमार्थसत्ता का आश्रय लिया है सो परम शान्त हो जाता है और हेयोपादेयबुद्धि उसकी नहीं रहती वह सब दृश्य को साक्षीभूत होकर देखता है और संसार के भाव अभाव में ज्यों का त्यों रहता है । वह उदय अस्त से रहित निस्संगरूप है । जैसे समुद्र जल से पूर्ण है वैसे ही विचारवान् आत्मतत्त्व से पूर्ण है । जैसे अन्धकूप में पड़ा हुआ हाथ के बल से निकलता है वैसे ही संसाररूपी अन्धकूप में गिरा हुआ विचार के आश्रय होकर विचारवान् ही निकलने को समर्थ होता है । हे रामजी! राजा को जो कोई कष्ट प्राप्त होता है तो वह विचार करके यत्न करता है तब तक कष्ट निवृत्त हो जाता है । इससे तुम विचार कर देखो कि जो किसी को कष्ट प्राप्त होता है तो विचार से ही मिटता है । तुम भी विचार का आश्रय करके सिद्धि को प्राप्त हो । वह विचार इस प्रकार प्राप्त होता है कि वेद और वेदान्त के सिद्धान्त को श्रवण कर पाठ करे और भले प्रकार विचरे तब विचार की दृढ़ता से आत्मतत्त्व को प्राप्त होगा । जैसे प्रकाश से पदार्थ का ज्ञान होता है वैसे ही गुरु और शास्त्र के वचनों से तत्त्वज्ञान होता है । जैसे प्रकाश में अन्धे को पदार्थ की प्राप्ति नहीं होती वैसे ही गुरु, शास्त्र और विचार से जो शून्य हो उस को आत्मपद की प्राप्ति नहीं होती । हे रामजी! जो विचाररूपी नेत्र से सम्पन्न हैं सोई देखते हैं और विचाररूपी नेत्र से रहित हैं वे अन्धे हैं । हे रामजी! ऐसा विचार करे कि "मैं कौन हूँ?" "यह जगत् क्या है?" "इसकी उत्पत्ति कैसे हुई" और "लीन कैसे होता है?" इस प्रकार सन्तों और शास्त्रों के अनुसार विचार करके सत्य को सत्य और असत्य को असत्य जान जिसको असत्य जाने उसका त्याग करे और सत्य में स्थित हो । इसी का नाम विचार है । इस विचार से आत्मपद की प्राप्ति होती है । हे रामजी! विचाररूपी दिव्यदृष्टि

जिसको प्राप्त हुई है उसको सब पदार्थों का ज्ञान होता है और विचार से ही आत्मपद की प्राप्ति होती है, जिसके पाने से परिपूर्ण हो जाता है और फिर शुभ अशुभ संसार में चलायमान नहीं होता– – ज्यों का त्यों रहता है । जब तक प्रारब्ध का वेग होता है तब तक शरीर की चेष्टा होती है और जब तक अपनी इच्छा होती है तब तक शरीर की चेष्टा करता है, फिर शरीर को त्याग कर केवल शुद्धरूप हो जाता है । इससे हे रामजी! ब्रह्मविचार का आश्रय करके संसारसमुद्र को तर जाओ । इतना रुदन रोगी और कष्टवान् पुरुष भी नहीं करता जितना विचार रहित पुरुष करता है । हे रामजी! जो पुरुष विचार से शून्य है उसको सब आपदाएँ आ प्राप्त होती हैं जैसे सब नदी स्वभाव से ही समुद्र में प्रवेश करती है वैसे अविचार से सब आपदायें प्रवेश करती हैं । हे रामजी! कीच का कीट, गर्त का कण्टक और अँधेरे बिल में सर्प होना भला है परन्तु विचार से रहित होना तुच्छ है । जो पुरुष विचार से रहित होकर भोग में दौड़ता है वह श्वान है । हे रामजी! विचार से रहित पुरुष बड़ा कष्ट पाता है । इससे एकक्षण भी विचार रहित नहीं रहना । विचार से दृढ़ होकर निर्भय रहना । "मैं कौन हूँ" और "दृश्य क्या है?" ऐसा विचार करके और सत्यरूप आत्मा को जानकर दृश्य का त्याग करना । हे रामजी! जो पुरुष विचारवान् है सो संसार के भोग में नहीं गिरता, सत्य में ही स्थित होता है । जब विचार स्थित होता है तब तत्वज्ञान होता है और जब तत्त्वज्ञान से विश्राम होता है तब विश्राम से चित्त का उपशम होकर दुःख नष्ट होता है ।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे मुमुक्षुप्रकरणे विचारनिरूपणन्नाम चतुर्दशस्सर्गः ॥१४॥

अनुक्रम

संतोषनिरूपण

वशिष्ठजी बोले, हे अविचार शत्रु के नाशकर्त्ता, रामजी! जिस पुरुष को सन्तोष प्राप्त हुआ वह परमानन्दित होकर त्रिलोकी के ऐश्वर्य को तृण की नाईं तुच्छ जानता है । हे रामजी! जो आनन्द अमृत के पान से और त्रिलोक के राज्य से नहीं होता वह आनन्द सन्तोषवान् को होता है । हे रामजी! रात्रि हृदयरूपी कमल को सकुचा देती है; जब सन्तोषरूपी सूर्य उदय होता है तब इच्छारूपी रात्रि का अभाव हो जाता है । जैसे क्षीरसमुद्र उज्ज्वलता से शोभायमान है वैसे ही संतोषवान् की कान्ति सुशोभित होती है । हे रामजी! त्रिलोकी के राजा की भी इच्छा निवृत्त न हुई तो वह दरिद्री है और जो निर्धन सन्तोषवान् है सो सब का ईश्वर है । सन्तोष उसी का नाम है जो अप्राप्त वस्तु की इच्छा न करे और प्राप्त भी हो तो इष्ट अनिष्ट में राग–द्वेष न करे । सन्तोषवान् सदा आनन्दपुरुष है और आत्मस्थिति से तृप्त हुआ है उसको और इच्छा कुछ नहीं । संतोष से उसका हृदय प्रफुल्लित हुआ है । जैसे सूर्य के उदय होने से सूर्य मुखी कमल प्रफुल्लित होता है वैसे ही सन्तोषवान् प्रफुल्लित हो जाता है । जो अप्राप्त वस्तु की इच्छा नहीं करता और जो अनिच्छित प्राप्त हुई को यथाशास्त्र क्रम से ग्रहण करता है उसका नाम संतोषवान् है जैसे पूर्णमासी का चन्द्रमा अमृत से पूर्ण होता है । वैसे ही सन्तोषवान् का हृदय संतोष से पूर्ण होता है । जो सन्तोष से रहित है उसके हृदयरूपी वन में सदा दुःख और चिन्तारूपी फूल फल उत्पन्न होते हैं । हे राम जी! जिसका चित् सन्तोष से रहित है उसको नाना प्रकार की इच्छा समुद्र की नाना प्रकार की तरंगों के समान उपजती हैं । सन्तुष्टात्मा परम आनन्दित है । उसका जगत् के पदार्थों में हेयोपादेय बुद्धि नहीं होती । हे रामजी! जैसा आनन्द संतोषवान् को होता है वैसा आनन्द अष्टसिद्धि के ऐश्वर्य और अमृत पान करने से भी नहीं होता । संतोषवान् सदा शान्त रूप और निर्मल रहता है । इच्छारूपी धूल सर्वदा उड़ती रहती है सो सन्तोषरूपी वर्षा से शान्त हो जाती है, इस कारण संतोषवान् निर्मल है । हे रामजी! जैसे आम का परिपक्व फल सुन्दर होता है और सबको प्यारा लगता है वैसे ही सन्तोषवान् पुरुष सबको प्यारा लगता है और स्तुति करने के योग्य है । जिस पुरुष को सन्तोष प्राप्त हुआ है उसको परम लाभ हुआ है । हे रामजी! जहाँ संतोष है वहाँ इच्छा नहीं रहती और सन्तोषवान् भोगों से दीन नहीं होता । वह उदारात्मा सर्वदा आनन्द से तृप्त रहता है । जैसे मेघ पवन के आने से नष्ट हो जाता है वैसे ही सन्तोष के आने से इच्छा नष्ट हो जाती है । जो संतोषवान् पुरुष है उसको देवता और ऋषीश्वर सब नमस्कार करते और धन्य धन्य कहते हैं । हे रामजी! जब सन्तोष करोगे तब परम शोभा पावोगे ।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे मुमुक्षु प्रकरणे संतोषनिरूपणन्नाम पञ्चदशस्सर्गः ॥१५॥

अनुक्रम

साधुसंगनिरूपण

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जितने दान और तीर्थादिक साधन हैं उनसे आत्मपद की प्राप्ति नहीं होती आत्मपद की प्राप्ति साधुसंग से ही होती है । साधुसंगरूपी एक वृक्ष है और उसका फल आत्मज्ञान है । जिस पुरुष ने फल की इच्छा की है सो अनुभव रूपी फल को पाता है । जो पुरुष आत्मानन्द से रहित है सो सत्संग करके आत्मानन्द से पूर्ण होता है जो अज्ञान से मृत्यु पाता है सो सन्त के संग से ज्ञान पाकर अमर होता है और जो आपदा से दुःखी है सो सन्त के संग से सम्पदा पाता है । आपदारूपी कमल का नाश करनेवाली सत्संगरूपी बरफ की वर्षा है । सत्संग से ही आत्मबुद्धि प्राप्त होती है जिससे मृत्यु नहीं होती और सब दुःखों से छूटकर परमानन्द को प्राप्त होता है । हे रामजी! सन्त की संगति से हृदय में ज्ञानरूपी दीपक जलता है जिससे अज्ञान–रूपी तम नष्ट हो जाता है और बड़े बड़े ऐश्वर्य को प्राप्त होता है । फिर उसे किसी भोग्य पदार्थ की इच्छा नहीं रहती और बोधवान् होके सबसे उत्तम पद में विराजता है जैसे कल्पवृक्ष के निकट जाने से वाञ्छित फल की प्राप्ति होती है वैसे ही संसारसमुद्र के पार उतारनेवाले सन्तजन हैं । जैसे धीवर नौका से पार लगाता है वैसे ही सन्तजन युक्ति से संसारसमुद्र से पार करते हैं । हे रामजी! मोहरूपी मेघ का नाश करनेवाला सन्त का संग पवन । जिसको अनात्म देहादिक से स्नेह नष्ट हुआ है और शुद्ध आत्मा में जिसकी स्थिति है वह उससे तृप्त हुआ है । फिर संसार के इष्ट अनिष्ट में उसकी बुद्धि चलाय मान नहीं होती, वह सदा समताभाव में स्थिति रहता है । सन्तजन संसारसमुद्र के पार उतारने में पुल के समान हैं और आपदारूपी बेलि को जड़ समेत नष्ट करनेवाले हैं । हे रामजी! सन्तजन प्रकाशरूप हैं, उनके संग से पदार्थों की प्राप्ति होती है । जो अपने पुरुषार्थ नेत्र से हीन हैं उनको पदार्थ की प्राप्ति नहीं होती । जिस पुरुष ने सत्संग का त्याग किया है वह नरकरूपी अग्नि में लकड़ी की नाईं जरेगा और जिस पुरुष ने सत्संग किया है उसको नरक की अग्नि का नाश करनेवाला सत्संगरूपी मेघ है । हे रामजी! जिसने सत्संगरूपी गंगा का स्नान किया है उसको फिर तप दान आदिक साधनों से प्रयोजन नहीं रहता । वह सत्संग से ही परम गति को प्राप्त होगा इससे और सब उपायों को त्यागकर सत्संग को ही खोजना चाहिये । जैसे निर्धन मनुष्य चिन्तामणि आदिक धन को खोजता है वैसे ही मुमुक्षु सत्संग को खोजता है । जो आध्यात्मिकादि तीनों तापों से जलता है उसको शीतल करनेवाला सत्संग ही है जैसे तपी हुई पृथ्वी मेघ से शीतल होती है वैसे ही हृदय सत्संग से शीतल होता है । हे रामजी! मोहरूपी वृक्ष का नाश करनेवाला सत्संग रूपी कुल्हाड़ है । सत्संग से ही मनुष्य अविनाशी पद को प्राप्त होता है । जिस पद । के पाने से और कुछ पाने की इच्छा नहीं रहती इससे सबसे उत्तम सत्संग ही है जैसे सब अप्सराओं से लक्ष्मी उत्तम हैं, वैसे ही सत्संगकर्त्ता सबसे उत्तम है । इसे अपने कल्याण के निमित्त सत्संग करना ही तुमको योग्य है । हे रामजी! जो चारों मोक्ष के द्वारपाल है उनका वृत्तान्त तुमसे कहा । जिस पुरुष ने इनके साथ प्रीति की है, वह शीघ्र आत्मपद को प्राप्त होगा और जो इनकी सेवा नहीं करते सो मोक्ष को न प्राप्त होंगे । हे रामजी! इन चारों मेंसे एक भी जहाँ आता है; वहाँ तीनों और भी आ जाते हैं । जैसे जहाँ समुद्र रहता है वहाँ सब नदी आ जाती हैं वैसे ही जहाँ शम आता है वहाँ सन्तोष, विचार और सत्संग ये तीनों भी आ जाते हैं और जहाँ साधुसंगम होता है वहाँ सन्तोष, विचार और शम ये तीनों आ जाते हैं । जहाँ कल्पवृक्ष रहता है वहाँ सब पदार्थ स्थित होते हैं । जैसे पूर्णमासी के चन्द्रमा में गुण कला सब इक ी हो जाती हैं वैसे ही जहाँ सन्तोष आता है वहाँ और तीनों भी आते हैं जहाँ आता है वहाँ सन्तोष, उपशम और सत्संग भी आ रहते हैं । जैसे श्रेष्ठ मन्त्री से राज्य लक्ष्मी आ स्थित होती है वैसे ही जहाँ विचार होता

है वहाँ और भी तीनों आते हैं । उससे हे रामजी! जहाँ ये चारों इकट्ठे होते हैं उसे परम श्रेष्ठ जानना । हे रामजी! यदि ये चारों न हो तो एक का तो अवश्य आश्रय करना । जब एक आवेगा तब चारों आ स्थित होंगे । मोक्ष की प्राप्ति के ये चार परम साधन हैं और किसी उपाय से मुक्ति न होगी । श्लोक– "**सन्तोषः परमो लाभः सत्संगः परमं धनम् । विचारः परमं ज्ञानं शमं च परमं सुखम् ॥**" हे रामजी! ये परम कल्याणकर्त्ता हैं । जो इन चारों से सम्पन्न है उसकी ब्रह्मादिक स्तुति करते हैं । इससे दन्त को दन्त लगा इनका आश्रय करके मन को वश करो । हे रामजी! मनरूपी विचाररूपी अंकुश से वश होता है । मनरूपी वन में वासनारूपी नदी चलती है उसके शुभ अशुभ दो किनारे हैं । पुरुषार्थ करना यह है कि अशुभ की ओर से मन को रोक के शुभ की ओर चलाना । जब अन्तर्मुख आत्मा के सम्मुख वृत्ति का प्रवाह होगा तब तुम परमपद को प्राप्त होगे । हे रामजी! प्रथम तो पुरुषार्थ करना यही है कि अविचाररूपी ऊँचाई को दूर करे । जब अविचाररूपी बेंट दूर होगा तब आप ही प्रवाह चलेगा । हे रामजी! दृश्य की ओर जो प्रवाह चलता है सो बन्धन का कारण है । जब आत्मा की ओर अन्तर्मुख प्रवाह हो तब मोक्ष का कारण हो जाय । आगे जो तुम्हारी इच्छा हो सो करो ।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे मुमुक्षुप्रकरणें साधुसंगनिरूपणन्नाम् षोडशस्सर्गः ॥१६॥

अनुक्रम

षट्प्रकरण विवरण

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! ये मेरे वचन परम पावन हैं । विचार–वान् शुद्ध अधिकारी को ये परम बोध के कारण हैं! शुद्ध पात्र पुरुष इन वचनों को पाके सोहते हैं और वचन भी उनको पाके शोभा पाते हैं । जैसे शरद्काल में मेघ के अभाव से चन्द्रमा और आकाश शोभा देते हैं वैसे ही शुद्धपात्र में ये वचन शोभते हैं और जिज्ञासु निर्मल वचनों की महिमा सुनके प्रसन्न होता है । हे रामजी! तुम परम पात्र हो और मेरे वचन अति उत्तम हैं । यह महारामायण मोक्षोपायक शास्त्र आत्मबोध का परम कारण है । इसमें परम पावन वाक्य की सिद्धता और युक्तार्थवाक्य हैं और नाना प्रकार के दृष्टान्त कहे हैं । जिसके बहुत जन्म के पुण्य इक ` होते हैं उसको कल्पवृक्ष मिलता है और फलसे झुक पड़ता है तब उसको यह शास्त्र श्रवण होता है । नीच को इसका श्रवण प्राप्त नहीं होता और न उसकी वृत्ति इसके श्रवण में आती है । जैसे धर्मात्मा राजा की इच्छा न्याय शास्त्र के सुनने में होती है और पापात्मा की नहीं होती वैसे ही पुण्यवान् की इच्छा इसके सुनने में होती है और अधर्मी को इच्छा नहीं होती । जो कोई इस मोक्षोपायक रामायण का आदि से अन्त पर्यन्त अध्ययन करेगा अथवा निष्काम सन्त के मुख से श्रद्धायुक्त सुनकर एकत्र भाव होकर विचारेगा उसका संसारभ्रम निवृत्त हो जावेगा । जैसे रस्सी के जानने से सर्प का भ्रम दूर हो जाता है वैसे ही अद्वैतात्मा तत्त्व के जानने से उसका संसारभ्रम नष्ट हो जावेगा । इस मोक्षोपायक शास्त्र के बत्तीस सहस्त्र श्लोक और षटप्रकरण हैं । पहिला वैराग्य प्रकरण वैराग्य का परम कारण है । हे रामजी जैसे मरुस्थल में वृक्ष नहीं होता और कदाचित् बड़ी वर्षा हो तो वहाँ भी वृक्ष होता है वैसे ही अज्ञानी का हृदय मरुस्थल की नाई है उसमें वैराग्य वृक्ष नहीं होता, पर जो इस शास्त्र की बड़ी वर्षा हो तो वैराग्य वृक्ष उसमें उत्पन्न होता है । इस वैराग्य प्रकरण के एक सहस्त्र पाँच सौ श्लोक हैं । उसके मुमुक्षु व्यवहार प्रकरण है, उसके परम निर्मल वचन हैं । जैसे मलीन मणि मार्जन करने से उज्ज्वल हो जाती है वैसे ही इन वचनों से मुमुक्षु का हृदय निर्मल होता है और विचार के बल से आत्मपद पाने को समर्थ होता है । इसके एक सहस्त्र श्लोक हैं । इसके अनन्तर उत्पत्ति प्रकरण के पाँच श्लोक हैं । उसमें बड़ी सुन्दर कथा दृष्टान्तों सहित कही हैं जिनके विचार से जगत् की उत्पत्ति का भाव मन से चला जाता है –अर्थात् इस जगत् का अत्यन्त अभाव जान पड़ता है । हे रामजी! इस जगत् में जो मनुष्य, देवता, दैत्य, पर्वत, नदी आदि और स्वर्गलोक पृथ्वी, अप, तेज, वायु, आकाश आदि स्थावर जंगम अज्ञान से भासते हैं इनकी उत्पत्ति कैसे हुई! जैसे रस्सी में सर्प, सीप में रूपा, सूर्य की किरणों में जल, आकाश में तरुवर और दूसरा चन्द्रमा; गन्धर्वनगर और मनोराज की सृष्टि भासती है और जैसे समुद्र में तरंग; आकाश में नीलता और नौका में बैठने से किनारे के वृक्ष और पर्वत चलते दृष्टि आते हैं एवम् जैसे बादल के चलने से चन्द्रमा धावता दीखता है, स्तम्भ में पुतली भासती हैं और भविष्यत् नगर से आदि ले असत्य पदार्थ सत्य भासते हैं वैसे ही सब जगत् है । अज्ञान से अर्थाकार भासता है और अज्ञान से ही इसकी उत्पत्ति दीखती है और ज्ञान से लीन हो जाता है जैसे निद्रा में स्वप्नसृष्टि की उत्पत्ति होती है और जागने से निवृत्ति हो जाती है वैसे ही अविद्या से जगत् की उत्पत्ति होती है और सम्यक्ज्ञान से निवृत्त हो जाती है वह अविद्या कुछ वस्तु ही नहीं है । सर्व ब्रह्म, जो चिदाकाशरूप शुद्ध, अनन्त और परमानन्दस्वरूप है उससे न जगत् उपजता है और न लीन होता है– ज्यों का त्यों आत्मसत्ता अपने आपमें स्थित है । उसमें जगत् ऐसा है जैसे भीत में चित्र होता है जैसे स्तम्भ में पुतलियाँ होती हैं जो हुए बिना भासती हैं वैसे ही यह सृष्टि मन में है वास्तव में कुछ बनी नहीं– सब आकाशरूप है । जब चित्तसंवेदन स्पन्द रूप होता है तब नाना प्रकार का जगत् होके भासता है और जब निस्स्पन्द

होता है तब मिट जाता है । इस प्रकार से जगत् की उत्पत्ति कही है । उसके अनन्तर स्थिति प्रकरण है, उसमें जगत् की स्थिति कही है । जैसे इन्द्र के धनुष में अविचार से रंग है और जै से सूर्य की किरणों में जल और रस्सी में सर्प भासता है और वह सब सम्यक् दृष्टि से निवृत्त होता है वैसे ही अज्ञान से जगत् की प्रतीति होती है केवल मनोराज से ही जगत् रच लेता है– कुछ उत्पन्न नहीं हुआ है । यह जगत् संकल्पमात्र है । जैसे जब तक मनोराज है तब तक वह नगर होता है जब मनोराज का अभाव हुआ तब नगर का भी अभाव हो जाता है वैसे ही जब तक अज्ञान है तब तक जगत् की उत्पत्ति होती है, जब संकल्प का लय होता है तब जगत् का भी अभाव हो जाता है । जैसे ब्रह्माजी के दश पुत्रों की सृष्टि संकल्प से हुई थी वैसे ही यह जगत् भी है । कोई पदार्थ अर्थरूप नहीं । हे रामजी! इस प्रकार स्थिति प्रकरण कहा है । इसके तीन सहस्त्र श्लोक हैं; उनके विचारने से जगत् प्रकरण कहा है । उसके तीन सहस्त्र श्लोक हैं; उनके विचारने से जगत् की सत्यता जाती रहती है । उसके अनन्तर उपशम प्रकरण है उसके पाँच सहस्त्र श्लोक हैं । जैसे स्वप्न से जागने पर वासना जाती रहती है वैसे ही इसके विचार से अहं त्वमादिक वासना लीन हो जाती है, क्योंकि उसके निश्चय में जगत् नहीं रहता । जैसे एक पुरुष सोया है उसको स्वप्न में जगत् भासता है और उसके निकट जो जाग्रत् पुरुष है उसको स्वप्न का जगत् आकाशरूप है तो जब आकाशरूप हुआ तब वासना कैसे रहे और जब वासना नष्ट हुई मन का उपशम हो जाता है । तब देखने मात्र उसकी सब चेष्टा होती है और मन में पदार्थों की इच्छा नहीं होती । जैसे अग्नि की मूर्ति देखनेमात्र होती है, अर्थाकार नहीं होती, वैसे ही उसकी चेष्टा होती है । हे रामजी! जैसे तेल से रहित दीपक निर्वाण हो जाता है वैसे ही इच्छा से रहित मन निर्वाण होता है । उसके अनन्तर निर्वाण प्रकरण है उसमें निर्वाण वचन कहे हैं । अज्ञान से चित्त का सम्बन्ध है, विचार करने से निर्वाण हो जाता है । जैसे शरद काल में मेघके अभाव से शुद्ध आकाश होता है वैसे ही विचार से जीव निर्मल होता है । हे रामजी! अहंकार पिशाच विचार से नष्ट होता है और जितनी कुछ इच्छा फुरती है सो निर्वाण हो जाती है । जैसे पत्थर की शिला फुरने से रहित होती है वैसे ही ज्ञान वान् इच्छा से रहित होता है तब जितनी कुछ उनकी जगत् की यात्रा है सो हो चुकती है और जो कुछ करना है सो कर चुकता है । हे रामजी! शरीर होते भी वह पुरुष अशरीर हो जाता है । नाना प्रकार का जगत् उसको नहीं भासता; जगत् की नेति से वह रहित होता है और अहं त्वमादिक तमरूप जगत् उसको नहीं भासता । जैसे सूर्य को अन्धकार दृष्टि नहीं आता वैसे ही उसको जगत् दृष्टि में नहीं आता और बड़े पद को प्राप्त होता है जैसे सुमेरु पर्वत के किसी कोने में कमल होता है और उस पर भँवर स्थित रहते हैं वैसे ही ब्रह्म के किसी कोने में जगत् तुषाररूप है और जीवरूप भँवरे उस पर स्थित हैं । वह पुरूष अचिन्त्य चिन्मात्र है; रूप अवलोकन और मनकर उसका आकाशरूप हो जाता है । वह उस पद को प्राप्त है जिस पद की उपमा ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र भी नहीं कह सकते ।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे मुमुक्षुप्रकरणे षट्प्रकरण विवरणन्नामसप्तदशस्सर्गः ॥१७॥

अनुक्रम

दृष्टान्त प्रमाण

वशिष्टजी बोले, हे रामजी! ये परम उत्तम वाक्य हैं । इनको विचारनेवाला उत्तम पद को प्राप्त होता है । जैसे उत्तम खेत में उत्तम बीज बोने से उत्तम फल की उत्पत्ति होती है वैसे ही इनका विचारने वाला उत्तम पद को प्राप्त होता है । ये वाक्य युक्तिपूर्वक हैं; कदाचित युक्ति से रहित वाक्यार्थ भी हों तो उनका त्याग करना चाहिये और युक्ति पूर्वक वाक्य अंगीकार करना चाहिये । हे रामजी! ब्रह्मा के भी वचन युक्ति से रहित हों तो उनको भी सूखे तृण के समान त्याग देना चाहिये और यदि बालक के वचन युक्ति पूर्वक हों तो उनको अंगीकार करना चाहिए । जैसे पिता के कूप का खारी जल हो तो उसे त्यागकर निकट के मिष्टकूप के जल को पान करते हैं वैसे ही बड़े और छोटेका विचार न करके युक्तिपूर्वक वचन अंगीकार करना चाहिये । हे रामजी! मेरे वचन सब युक्तिपूर्वक और बोध के परम कारण हैं । जो पुरुष एकाग्र होके इस शास्त्र को आदि से अन्त पर्यन्त पढ़ेगा अथवा पण्डित से श्रवण करके विचारेगा तब उसकी बुद्धि संस्कारित होगी । जब पहिले वैराग्य प्रकरण को विचारोगे तब वैराग्य उपजेगा । जितने जगत् के रमणीय भोग पदार्थ हैं उनको विरस जानकर किसी पदार्थ की वाच्छा न करोगे । जब भोग में वैराग्य होता है तब शान्तिरूप आत्मतत्त्व में प्रतीति होती है और जब विचार से बुद्धि संस्कारित होगी तब शास्त्र का सिद्धान्त बुद्धि में स्थित होगा । जैसे शरद्काल में बादल के अभाव से आकाश सब ओर से स्वच्छ हो जाता है वैसे ही संसार के विकार छूटकर बुद्धि निर्मल होगी और फिर आधिव्याधि की पीड़ा न होगी । हे रामजी! ज्यों–ज्यों विचार दृढ़ होगा त्यों–त्यों शान्तात्मा होगे । इससे जितने संसार के यत्न हैं उनको त्याग इस शास्त्र के बारंबार विचार से चैतन्य सत्ता उदय होगी और मोहादिक विकार की सत्ता नष्ट होगी । जैसे ज्यों ज्यों उदय होता है त्यों–त्यों अन्धकार नष्ट होता है वैसे ही विकार नष्ट होंगे । तब उस पद की प्राप्ति होगी जिस के पाने से संसार के क्षोभ मिट जायँगे । जैसे शरद्काल में मेघ नष्ट हो जाता है वैसे ही संसार के क्षोभ मिट जाते हैं । हे रामजी! जिस पुरुष ने कवच पहना हो उसको बाण नहीं बेध सकते वैसे ही ज्ञानवान् पुरुष को संसार के रागद्वेष नहीं बेध सकते । उसको भोग की भी इच्छा नहीं रहती और जब विषय भोग आते हैं तब उनको विषय जानके बुद्धि ग्रहण नहीं करती । जैसे पतिव्रता स्त्री अपने अन्तःपुर से बाहर नहीं निकलती वैसे ही उसकी बुद्धि भीतर से बाहर नहीं निकलती । हे रामजी! बाहर से तो वह भी प्राकृतिक मनुष्यों के समान दृष्टि आते हैं और जो कुछ अनिश्चित प्राप्त होते हैं उनको भुगतता हुआ दृष्टि में आता है पर अन्तर से उसको रागद्वेष नहीं फुरता । हे रामजी! जो कुछ जगत् की उत्पत्ति और प्रलय का क्षोभ है वह ज्ञानवान् को नष्ट नहीं कर सकता । जैसे चित्र की बेलि को आँधी नहीं चला सकती वैसे ही उसको जगत् का दुःख नहीं चला सकता । वह संसार की ओर से जड़ हो जाता है और वृक्ष के समान गम्भीर, पर्वत की नाईं स्थिर और चन्द्रमा के सदृश शीतल हो जाता है । हे रामजी! वह आत्मज्ञान से ऐसे पद को प्राप्त होता है जिसके पाने से और कुछ पाने योग्य नहीं रहता । आत्मज्ञान का कारण यह मोक्षोपाय शास्त्र है इसमें नाना प्रकार के दृष्टान्त कहे हैं । जो वस्तु अपरिच्छिन्न हो और देखने में न आवे और उसका न्याय देखने में हो तो उसको उपमा से विधिपूर्वक समझाने का नाम दृष्टान्त है । हे रामजी! जगत् कार्य और कारण से रहित है तो आत्मा और जगत् की एकता कैसे हो इससे मैं जो दृष्टान्त कहूँगा उसका एक अंश अंगी कार करना, सब देश अंगीकार न करना । हे रामजी! कार्य कारण की कल्पना मूर्खों ने की है । उसके मिटाने के लिये मैं स्वप्न दृष्टान्त कहता हूँ, उसके समझने से तेरे मन का संशय नष्ट हो जावेगा । दृग और दृश्य का भेद मूर्ख को भासता है । उसके दूर करने के अर्थ मैं स्वप्न दृष्टान्त कहूँगा जिसके विचारने से मिथ्याविभाग कल्पना

का अभाव होता है । हे रामजी! ऐसी कल्पना का नाशकर्ता यह मेरा मोक्षउपाय शास्त्र है । जो पुरुष आदि से अंत–पर्यन्त इसे विचारेगा सो पूर्ण संस्कारी होगा । जो पद पदार्थ को जाननेवाला हो और दृश्य को बारंबार विचारे तो उसका दृश्य भ्रम नष्ट होगा । इस शास्त्र के विचार में किसी तीर्थ, तप, दान आदिक की अपेक्षा नहीं है । जहाँ स्थान हो वहाँ बैठे और जैसा भोजन गृह में हो वैसा करे और बारंबार इसका विचार करे तो अज्ञान नष्ट होकर आत्मपद की प्राप्ति होवेगी । हे रामजी! यह शास्त्र प्रकाशरूप है । जैसे अन्धकार में पदार्थ नहीं दीखता और दीपक के प्रकाश से चक्षुसहित दीखता है वैसे शास्त्र रूपी दीपक विचाररूपी नेत्रसहित हो तो आत्मपद की प्राप्ति हो । हे रामजी! आत्मज्ञान विचार बना वर और शाप से प्राप्त नहीं होता । जब विचार करके दृढ़ अभ्यास कीजिये तब प्राप्त होता है इससे इस मोक्षपावन शास्त्र के विचार से जगद्भ्रम नष्ट हो जावेगा और जगत् को देखते देखते जगत् भाव मिट जावेगा । जैसे लिखी हुई सर्प की मूर्ति से बिना विचार भ्रम होता है और जब बिचारकर देखिये तब सर्पभ्रम मिट जाता है वैसे ही जगद्भ्रम विचार करने से नष्ट हो जाता है और जन्म–मरण का भय भी नहीं रहता । हे रामजी! जन्ममरण का भय भी बड़ा दुःख है, परन्तु इस शास्त्र के विचार से वह भी नष्ट हो जाता है । जिन्होंने इसका विचार त्यागा है वह माता के गर्भ में कीट होकर भी कष्ट से न छूटेंगे और विचारवान् पुरुष आत्मपद को प्राप्त होंगे । जो श्रेष्ठ ज्ञानी है उसको अनन्त सृष्टि अपना ही रूप भासती है कोई पदार्थ आत्मा से भिन्न नहीं भासता । जैसे जिसको जल का ज्ञान है उसको लहर और आवर्त्त सब जलरूप ही भासती है वैसे ही ज्ञानवान् को सब आत्मरूप ही भासता है और वह इन्द्रियों के इष्ट अनिष्ट की प्राप्ति में इच्छा द्वेष नहीं करता, सदा एकरस मन के संकल्प से रहित शान्तरूप होता है जैसे मंदराचल पर्वत के निकलने से क्षीर समुद्र शान्त हुआ है वैसे ही संकल्प विकल्प रहित मनुष्य शान्तिरूप होता है । हे रामजी! और तेज दाहक होता है परन्तु ज्ञान का तेज जिस घट में उदय होता है सो शीतल और शान्तिरूप हो जाता है और फिर उसमें संसार का विकार कोई नहीं रहता । जैसे कलियुगमें शिखावाला तारा उदय होता है और कलियुग के अभाव में नहीं उदय होता वैसे ही ज्ञानवान् के चित्त में विकार उत्पन्न नहीं होता । हे रामजी! संसार भ्रम आत्मा के प्रमाद से उत्पन्न होता है, आत्मज्ञानहोने से वह यत्न के बिना ही शान्त हो जाता है । फूल और पत्र के काटने में भी कुछ यत्न होता है परन्तु आत्मा के पाने में कुछ यत्न नहीं होता क्योंकि बोधरूप को बोध ही से जानता है । हे रामजी! जो जाननेमात्र ज्ञानस्वरूप है उसमें स्थित होने का क्या यत्न है । आत्मा शुद्ध और अद्वैतरूप है और जगद्भ्रममात्र है । जिसकी सत्यता पूर्वापर विचार से न पाइये उसको भ्रममात्र जानिये और पूर्वापर विचार से जो स्थिर रहे उसको सत्यरूप जानिये । इस जगत् की सत्यता आदि अन्त में नहीं है । इससे स्वप्नवत् है । जैसे स्वप्न आदि अन्त में कुछ नहीं होता वैसे ही जाग्रत भी आदि अन्त में नहीं है इससे जाग्रत और स्वप्न दोनों तुल्य हैं । हे रामजी! यह वार्त्ता बालक भी जानता है कि जिसकी आदि अन्त में सत्यता न पाइये सो स्वप्नवत् है । जिसका आदि भी न हो और अन्त भी न रहे उसका मध्य भी असत्य जानिये । उसका दृष्टान्त यह है कि संकल्प पुरीवत् ध्यान नगर की नाईं, स्वप्नपुरी की नाईं; वर और शाप से जो उपजता है उसकी नाईं और ओषधि से उपज की नाईं, इन पदार्थों की सत्यता न आदि में होती है और न अन्त में होती है और मध्य में जो भासता है सो भी भ्रममात्र है वैसे ही यह जगत् अकारण है और कार्यकारणभाव सम्बन्ध से भासता है तो कार्य–कारण से कार्यरूप जगत् हुआ, पर आत्मसत्ता अकारण है । जगत् साकार और आत्मा निराकार है । इस जगत् दृष्टान्त जो आत्मा में देंगे उसको तुमको एक अंश ग्रहण करना चाहिये । जैसे स्वप्न की सृष्टिका पूर्व अपर भाव आत्मा है, क्योंकि अकारण है और मध्यभाव का दृष्टान्त नहीं मिलता क्योंकि उपमेय अकारण है तो उसका इसके समान दृष्टान्त क्योंकर हो । इससे अपने बोध के

अर्थ के दृष्टान्त का एक अंश ग्रहण करना हे रामजी! जो विचार वान् पुरुष हैं सो गुरू और शास्त्र के वचन सुनके सुखबोध के अर्थ दृष्टान्त का एक अंश ग्रहण करते हैं तो उनको आत्मतत्त्व की प्राप्ति होती है, क्योंकि वे सारग्राहक होते हैं और जो अपने बोध के अर्थ दृष्टान्त का एक अंश ग्रहण नहीं करते और वाद करते हैं उनको आत्मतत्त्व की प्राप्ति नहीं होती । इससे दृष्टान्त का एक अंश सारभूत ग्रहण करके दृष्टान्त के सर्वभाव से न मिलना चाहिये और पृथक को देखकर तर्क न करना चाहिए । जैसे अन्धकार में पदार्थ पड़ा हो तो दीपक के प्रकाश से देख लेते हैं क्योंकि दीपक के साथ प्रयोजन है, ऐसा नहीं कहते कि दीपक किसका है और तेलबत्ती कैसी है और किस स्थान की है वैसे ही दृष्टान्त का एक अंश आत्मबोध के निमित्त अंगी कार करना । हे रामजी! जिसके वाक्य से अर्थ सिद्ध हो और जो अनुभव को प्रकट करे वह वचन अंगीकार करना और जिससे वाक्यार्थ सिद्ध न हो उसका त्याग करना । जो पुरुष अपने बोध के निमित्त वचन को ग्रहण करता है वही श्रेष्ठ है और जो बाद के निमित्त ग्रहण करता है वह मूर्ख है । जो कोई अभिमान को लेकर ग्रहण करता है वह हस्ती के समान अपने शिर पर मि ी डालता है––उसका अर्थ सिद्ध नहीं होता और जो अपने बोध के निमित्त वचन को ग्रहण करके विचारपूर्वक उसका अभ्यास करता है उसका आत्मा शान्त होता है । हे रामजी! आत्मपद पाने के निमित्त अवश्यमेव अभ्यास चाहिये । जब शम, विचार, संतोष और सन्त समागम से बोध को प्राप्त हो तब परमपद को पाता है । हे रामजी। जो कोई दृष्टान्त देता है वह एक देश लेकर कहता है, सर्वमुख कहने से अखण्डता का अभाव हो जाता है सर्वमुख दृष्टान्त मुख्य को जानिये वह सत्यरूप होता है । ऐसे तो नहीं होता कि आत्मा तो सत्यरूप,कार्य कारण से रहित और चैतन्य है उसके बताने के लिये कार्य कारण जगत् का दृष्टान्त कैसे दीजिये जो कोई जगत् का दृष्टान्त देता है वह केवल एक अंश लेके कहता है और बुद्धिमान भी दृष्टान्त के एक अंश को ग्रहण करते हैं । श्रेष्ठ पुरुष अपने बोध के निमित्त सार को ही ग्रहण करते हैं जैसे क्षुधार्थी को चावलपाक प्राप्त हो तो भोजन करने का प्रयोजन है वैसे ही जिज्ञासु को भी यही चाहिये कि अपने बोध के निमित्त सार को ग्रहण करके वाद न करे, क्योंकि उसकी उत्पत्ति और स्थिति का वाद करना व्यर्थ है । हे रामजी! वाक्य वही है जो अनुभव को प्रकट करे और जो अनुभव को न प्रकट करे उसका त्याग करना चाहिये । कदाचित् स्त्री का वाक्य आत्मानुभव को प्रत्यक्ष करनेवाला हो तो उसको भी ग्रहण करना चाहिये और जो परमगुरु के तथा वेदवाक्य भी हों और अनुभव को प्रकट न करें तो उनका त्याग चाहिये । जब तक विश्राम न पावे तब तक विचार करना चाहिये । विश्राम का नाम तुरीयपद है जैसे मन्दराचल पर्वत के क्षोभ से क्षीरसमुद्र शान्त हुआ था वैसे ही विश्राम की प्राप्ति होने से अक्षय शान्ति होती है । हे रामजी! तुरीयपद संयुक्त पुरुष श्रुति–स्मृति उक्त कर्मों के करने से कुछ प्रयोजन सिद्ध नहीं होता और न करने से कुछ प्रत्यवाय नहीं होता । वह सदेह हो चाहे विदेह हो गृहस्थ हो चाहे विरक्त हो उसको कुछ नहीं करना है । वह पुरुष संसारसमुद्र से पार ही है । हे रामजी! उपमेय की उपमा एक अंश से ग्रहण कर जानता है तब बोध की प्राप्ति होती है और बोध के बिना मुक्ति को प्राप्त नहीं होता, वह केवल व्यर्थ वाद करता है । हे रामजी! जिसके घट में शुद्धि स्वरूप आत्म सत्ता विराजमान है वह जो उसको त्यागकर और विकल्प उठाता है तो वह चोग चञ्चु और मूर्ख है । हे रामजी! प्रत्यक्ष प्रमाण मानने योग्य है, क्योंकि अनुमान और अर्थापत्ति आदि प्रमाणों से उसकी सत्ता ही प्रकट होती है । जैसे सब नदियों का अधिष्ठान समुद्र है वैसे ही सब प्रमाणों का अधिष्ठान प्रत्यक्ष प्रमाण है । वह प्रत्यक्ष क्या है सो सुनिये । हे रामजी! चक्षुजन्य ज्ञान संवित संवेदन है, जो उस चक्षु से विद्यमान होता है उसका नाम प्रत्यक्ष प्रमाण है । उन प्रमाणों को विषय करनेवाला जीव है । अपने वास्तव स्वरूप के अज्ञान से अनात्मारूपी दृश्य बना है उसमे अहंकृति से अभिमान हुआ है और

अभिमान ही से सब दृश्य होता है उससे हेयोपादेय बुद्धि होती है जिससे राग द्वेष करके जलता है और आपको कर्ता मानकर बहिर्मुख हुआ भटकता है । हे रामजी! जब विचार करके संवेदन अन्तर्मुखी हो तब आत्मपद प्रत्यक्ष होकर निज भाव को प्राप्त होता है और फिर प्रच्छिन्नभाव नहीं रहता, शुद्ध शान्ति को प्राप्त होता है । जैसे स्वप्न से जगकर स्वप्न का शरीर और दृश्यभ्रम नष्ट हो जाता है वैसे ही आत्मा के प्रत्यक्ष होने से सब भ्रम मिट जाता है और शुद्ध आत्मसत्ता भासती है ।हे रामजी! यह दृश्य और दृष्टा मिथ्या है । जो दृष्टा है सो दृश्य होता है और दृश्य है सो दृष्टा होता है–यह भ्रम मिथ्या आकाशरूप है । जैसे पवन में स्पन्दशक्ति रहती है वैसे ही आत्मा में संवेदन रहती है । जब संवे दन स्पन्दरूप होती है तब दृश्यरूप होके स्थित होती है । जैसे स्वप्न में अनुभवसत्ता दृश्य रूप होके स्थित होती है वैसे ही यह दृश्य है । सब आत्मसत्ता ही है, ऐसा विचार करके आत्मपद को प्राप्त हो जावो और जो ऐसा विचार करके आत्मपद को प्राप्त न हो सको तो अहंकार का जो उल्लेख फुरता है उसका अभाव करो । पीछे जो शेष रहेगा सो शुद्धबोध आत्मसत्ता है । जब तुम शुद्धबोध को प्राप्त होगे तब ऐसी चेष्टा होगी जैसे यंत्र की पुतली संवेदन बिना चेष्टा करती है वैसे ही देहरूपी पुतली का चलानेवाला मन रूपी संवेदन है, उसके बिना पड़ी रहेगी और अहंकार का अभाव होगा । इससे यत्न करके उस पद के पाने का अभ्यास करो जो नित्य, शुद्ध और शान्तरूप है । हे रामजी! "दैव" शब्द को त्यागकर अपना पुरुषार्थ करो और आत्मपद को प्राप्त हो । जो कोई पुरुषार्थ में शूरमा है सो आत्मपद को प्राप्त होता है औरजो नीच पुरुषार्थ का आश्रय करता है सो संसारसमुद्र में डूबता है ।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे मुमुक्षुप्रकरणे दृष्टान्त प्रमाणनामाष्टादशस्सर्गः ॥१८॥

अनुक्रम

आत्मप्राप्तिवर्णन

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जब सत्संग करके मनुष्य शुद्धबुध्दि करे तब आत्मपद पाने को समर्थ होता है । प्रथम सत्संग यह है कि जिसकी चेष्टा शास्त्र के अनुसार हो उसका संग करे और उसके गुणों को हृदय में धरे । फिर महापुरुषों के शम और संतोषादि गुणों का आश्रय करे । शम संतोषादिक से ज्ञान उपजता है । जैसे मेघ से अन्न उपजता है । अन्न से जगत् होता है और जगत् से मेघ होता है वैसे ही शम, संतोष और शमादिक गुण और आत्म ज्ञान करने से शमादिक गुण स्थित होते हैं । जैसे बड़े ताल से मेघ और मेघ से ताल पुष्ट होता हैं वैसे ही शमादिक गुणों से आत्मज्ञान होता है औरर आत्मज्ञान से शमादि गुण पुष्ट होते हैं । ऐसा विचार करके शम सन्तोषादिक गुणों का अभ्यास करो तब शीघ्र ही आत्मतत्त्व को प्राप्त होगे । हे रामजी! ज्ञानवान् पुरुष को शमादिक गुण स्वा भाविक प्राप्त होते हैं और जिज्ञासुको अभ्यास करने से प्राप्त होते हैं । जैसे धान्य की रक्षा जब स्त्री करती है और ऊँचे शब्द से पक्षियों को उड़ाती है तब फल को पाती है और उससे पुष्ट होती है वैसे ही शम संतोषादिक के पालने से आत्मतत्त्व की प्राप्ति होती है । हे रामजी! इस मोक्ष उपाय शास्त्र को आदि से लेकर अन्त पर्यन्त विचारे तो भ्रान्ति निवृत्ति होके धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष सर्व पुरुषार्थ सिद्ध होते हैं । यह शास्त्र मोक्ष उपाय का परम कारण है । जो शुद्ध बुद्धिमान् पुरुष इसको विचारेगा उसको शीघ्र ही आत्मपद की प्राप्ति होगी । इससे इस मोक्ष उपाय शास्त्र का भले प्रकार अभ्यास करो ।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे मुमुक्षु प्रकरणे आत्मप्राप्तिवर्णनन्नामैकोनविंशतितस्सर्गः॥१९॥

समाप्तमिदं मुमुक्षुप्रकरणं द्वितीयम् ॥

अनुक्रम